Chapter - 3

"तृतीय अध्याय"

"कृति - परिचय"

पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि बदलती युगगत परिस्थितियों ने "वैयक्तिक चेतना" को सम्यक् रूप से प्रभावित किया है फलत: 'आदर्श-चेतना' और 'व्यावहारिक-चेतना' सन् 1960 के पश्चात् क्षीण होती गई और उनकी अपेक्षा यथार्थ व भौतिक चेतना तीव्रतर होती गई, जिसका विस्तृत चित्रण आधुनिक हिन्दी नाटकों में दृष्टिगोचर होता है । प्रस्तुत अध्याय में कालक्रम के आधार पर आलोच्य कालीन कृतियों का अध्ययन करेंगे -

अंगारों की मौत {1961}

"शंभूदयाल सक्सेना"

प्रस्तुत नाटक राष्ट्रीय चेतना व देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है आदर्श दृष्टि को प्रस्तुत करने वाला नाटक है । इस नाटक में स्वतंत्रता प्रेमी क्रान्तिकारियों के प्रति किये गये अंग्रेज़ों के अत्याचारों, षड्यन्त्रों का चित्रण है । भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू आजादी प्राप्ति हेतु अनेक प्रकार की यातनाएं सहते हैं परन्तु वे अंग्रेज़ों की दमनकारी नीति के समक्ष नहीं झुकते । ये तीनों हंसते-हंसते फांसी के फंदे पर चढ़ जाते हैं । उनका बलिदान देखकर अंग्रेज़ी सरकार भी कांप उठती है । नाटक में चन्द्रशेखर, भगत सिंह, गुरुदेव तथा सुखदेव की घोषणा -"हमारे रक्त की एक एक बूंद अंग्रेज़ी सरकार से बदला लेकर रहेगी" के साथ ही नाटक का अंत हो जाता है ।

प्रस्तुत नाटक में "आदर्श चेतना" की स्थापना की है । इसके सभी क्रान्तिकारी पात्र आदर्श, कर्तव्यनिष्ठ हैं ।

रात-रानी

"डा0 लक्ष्मी नारायण लाल"-

डा0 लाल हिन्दी नाटक जगत के ऐसे सृजनकार हैं जिनकी लेखनी विगत तीन दशकों से निरन्तर सक्रिय रही है और नाटक रूपी मोती देकर इस विद्या को समृद्ध बना रही है । यूं तो डा0 लाल ने साहित्य की अन्य विधाओं यथा- उपन्यास, कहानी आदि में भी अपना स्थान बनाया है, लेकिन नाटककार के रूप में तो उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुई है । उनके नाटक जहां शिल्पगत वैचित्र्य लिए हुए हैं वहीं कथ्य की विभिन्नता के लिए भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । मादा कैक्टस, संगुन पंछी, तोता-मैना, व्यक्तिगत, करफ्यू, मिस्टर अभिमन्यु, यज्ञ प्रश्न, एक और हरिश्चन्द्र, रामकी लड़ाई, कजरीबन आदि नाटक उनके सशक्त नाटककार होने का प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं । उन्हीं की सफल लेखनी से प्रसूत "रातरानी" नाटक भौतिकवादी चेतना व आदर्श-चेतना के द्वंद्व को प्रस्तुत करता है । साठोत्तर समाज में क्रमश: तीव्र होती पाश्चात्य सभयता ने भारतीय परम्परागत मूल्यों, आचारों, विचारों तथा आदर्शों को किससीमा तक सीमित कर दिया है, इसका चित्रण "जयदेव" के माध्यम से बखूबी किया है । भौतिकता के आकर्षण ने परिवार तथा दाम्पत्य जीवन को कलहपूर्ण बना दिया है पति-पत्नी के बीच वैचारिक द्वंद्व को उपस्थित कर दिया है - इसी तथ्य को प्रस्तुत नाटक में कथावस्तु बना कर नाटककार डा0 लाल ने आधुनिक विषम परिस्थितियों और उससे ग्रस्त मन:स्थितियों को उद्घाटित किया है । डा0 दया शंकर शुक्ल ने "रात-रानी" की समीक्षा करते हुए कहा है -" वह आज के अर्थ प्रधान युग की बौद्धिकता का मानवीय संवेदनाओं के साथ द्वंद्व प्रस्तुत

-: :-

करता है ।"[1]

नाटक की कथावस्तु पति -पत्नी के विभिन्न दृष्टिकोणों की है । समसामयिक युग में अर्थ की महत्ता होने से व्यक्ति के परस्पर संबंध बदल रहे हैं यहाँ तक कि पति-पत्नी के संबंध भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके । "इसकी विषय वस्तु है ,अर्थ और "आदर्श की बीच संघर्ष ~~के~~ की पृष्ठभूमि में पति-पत्नी के परस्पर संबंधों का विश्लेषण ।"[2] नाटक का नायक जयदेव भौतिकवादी चेतना से अभिप्रेरित है तो उसकी पत्नी कुन्तल आदर्श चेतना से । जयदेव धनी बाप का पुत्र होते हुए भी और अधिक धन की कामना करता है । इस लिए वह कुन्तल को नौकरी करने के लिए विवश करता है । वह नारी स्वतंत्रता का पक्षपाती होते हुए भी कुन्तल को अपने अधिकार में रखता है । लेकिन कुन्तल सन्तोषी प्रवृत्ति की सहृदया नारी है । वह घर-गृहस्थी को ही नारी का कार्य क्षेत्र मानती है । जयदेव का जीवन दर्शन "शरीर" तक सीमित है, जो दिखावटी व खोखला है । वह प्रत्येक व्यक्ति के दो व्यक्तित्व मानता है, एक घर का और एक बाहर का । लेकिन कुन्तल "आत्मा" में विश्वास करती हुई सत्य को महत्व देती है । जयदेव का जीवनदर्शन उसके बैंक बेलेंस की समाप्ति पर ही समाप्त हो जाता है और अन्त में वह कुन्तल की श्रद्धाभावना व विश्वास के समक्ष झुकता है । उसका अहम् टूट जाता है ।

इस प्रकार यह नाटक अर्थ व आदर्श के बीच के संघर्ष को चित्रित करता हुआ आदर्श को महत्व देता है । आर्थिक द्वंद्व के साथ साथ नाटककार ने गौण रूप से निम्न वर्ग की चेतना को भी उद्घाटित ~~किया है~~ करता है । प्रेस के मजदूर अपने अधिकारों के लिए हड़ताल, घेराबंदी

1- लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक और रंगमंच- डा० दयाशंकर शुक्ल-पृ० 69

2- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य - डा० महेन्द्र भटनागर-पृ०-83

आदि का सहारा लेते हैं और मालिक जयदेव को बोनस देने पर विवश करते हैं । इस प्रकार नाटक में निम्न वर्ग की चेतना तथा अन्याय के प्रति विद्रोह को चित्रित किया गया है ।

प्रस्तुत नाटक में जयदेव पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है वह भौतिक चेतना से प्रभावित है और कुन्तल आदर्श चेतना से युक्त है क्योंकि वह मानवीय संवेदनाओं को महत्व देती है ।

"रक्त कमल" (1962)

"डा0 लक्ष्मीनारायण लाल"

डा0 लाल द्वारा लिखित नाटक "रक्तकमल" स्वातंत्र्योत्तर कालीन युवा पीढ़ी की चेतना को उद्घाटित करता है । नाटक का नायक कमल विदेश में रह चुका है ,उसे अपने देश के नासूरों का पता है, इसलिए वह उन्हें भरने और भारतीय समाज में रूढ़ियों, कुप्रथाओं की सर्वत्र फैली दुर्गन्ध को दूर करने के लिए माँ की ममता तथा घर के मोह को छोड़कर चल देता है । कमल का बड़ा भाई महावीर उद्योगपति है जो मजदूरों का शोषण करता है । इसलिए कमल उसे भी गरीबों के शोषक के रूप में देखता है । वह महावीर और उसके मित्र गुरूराम की अन्यायपूर्ण नीतियों से असन्तुष्ट है । वह निम्नवर्ग की ममता, कनु और सारंग के प्रति अपनत्व व ममत्व रखता है । नई पीढ़ी में नव चेतना व नव जागरण का मंत्र फूंकता है । प्रस्तुत नाटक में कमल आदर्श चेतना से प्रभावित पात्र है । जबकि महावीर और गुरूराम भौतिक चेतना से युक्त हैं । कमल की आवाज वास्तव में एक व्यक्ति की आवाज़ नहीं है अपितु पूरे इतिहास और विशेषत: शोषित

वर्ग की जागृति की आवाज है । डा0 दयाशंकर शुक्ल के शब्दों में कहें तो "कमल की आवाज में किसी सामयिक राजनीतिक चेतना का वह स्वर नहीं है, जो उसे किसी तात्कालिक सत्ता या व्यक्ति के परिवर्तन मात्र की प्रेरणा देता है प्रत्युत् वह इतिहास दृष्टि है जो उसके अन्दर से उद्बुद्ध हुई है ।"[1] भौतिकता की चकाचौंध में अंधा हुआ व्यक्ति इस प्रकार अनैतिक कार्य कर रहा है जिससे मानवता, प्रेम, सहयोग जैसे मूल्य चटकने लगे हैं । इस तथ्य को महावीर द्वारा अमृता की भूमि पर अवैध अधिकार करने तथा षड्यन्त्र रचकर उसके पिता की हत्या करने से - स्पष्ट किया गया है ।

समष्टिगत रूप में प्रस्तुत नाटक आदर्श व भौतिकता का द्वंद्व उभार कर सामने लाता है । महावीर गुरूराम जैसे पात्र उच्चवर्गीय पूंजीपति के शोषण व अत्याचार का प्रतिनिधित्व करते हैं तो अमृता, कनु, सारंग आदि पात्र की नव जाग्रत जनता का प्रतीक हैं । कमल की मां धार्मिक विचारों की है और कमल का भतीजा अगस्त्य आने वाले पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है ।

1- लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक और रंगमंच - डा0 दयाशंकर शुक्ल पृ0-66

"चिराग की लौ"
- रेवती सरन शर्मा

नाट्य जगत में रेवती सरन शर्मा एक जाना पहचाना नाम है उन्होंने अनेकों नाटक व दर्जनों रेडियो नाटक व एकांकी लिखे हैं। शर्मा जी ने अपने नाटकों के माध्यम से जहां एक ओर सामाजिक रूढ़ मान्यताओं व जड़ीभूत मान्यताओं पर प्रहार किया है तो दूसरी ओर समाज में व्यापक रूप से फल-फूल रहे भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, जमाखोरी तथा पूंजी पतियों के द्वारा किये जा रहे अत्याचारों का पर्दाफाश किया गया है। "न धर्म न ईमान" "चिराग की लौ" "अंधेरे का बेटा" आदि नाटक इनके जागरूक व स्वस्थ विचारों को अभिव्यक्त प्रदान कर रहे हैं।

आधुनिक युग में व्यक्ति आदर्श को छोड़कर भौतिकता की ओर अग्रसर हो रहा है। वह पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण कर रहा है। इस प्रभाव से परिवारों में विघटनकारी तत्व उत्पन्न हो गये हैं। इस तथ्य का सफलता एवं यथार्थपूर्ण चित्रण रेवती सरन शर्मा ने "चिराग की लौ" में किया है। नाटक का नायक किशोर गरीब घराने का ईमानदार इनकम टैक्स आफिसर है। उसकी पत्नी तारा धनी बाप की बेटी है। वह किशोर से प्रेम विवाह करके अपनी गृहस्थी बसाती है। अपनी सखी रानी के सम्पर्क में आने से वह "भौतिक चेतना" की ओर प्रभावित हो जाती है। तारा का भौतिक सुख-साधनों के प्रति आकर्षण बढ़ता जाता है। वह कपड़ों, बच्चों के उपहारों, शॉपिंग आदि से रानी द्वारा खरीद ली जाती है। बढ़ते भौतिक आकर्षण से उसका परिवार बिखराव की स्थिति में आ जाता है। किशोर तारा के व्यवहार से क्षुब्ध हो जाता है क्योंकि वह गिरीश के आफिस में किशोर की इच्छा के विरूद्ध नौकरी करने लगती है। गिरीश दलाल का काम करता है। वह बड़े-बड़े सेठों से पैसा ऐंठकर उनके बहीखातों का मामला सुलझाता है। रानी का पति जयंत

अपने "गड़बड़" मामले को सुलझाने के लिए तारा की मदद लेता है । इसके अतिरिक्त, वह साढे पाँच हजार रूपये के लालच में छापामार कर लाये दस्तावेज किशोर की अनुपस्थिति में गिरीश को दे देती है और रेडियो सैट, सोफा सैट, गलीचा आदि खरीद लाती है । आदर्श किशोर यह सब सहन नहीं कर पाता ,परिणामत: पति-पत्नी के मधुर संबंध नष्ट हो जाते हैं ।

जैसाकि उल्लेखनीय है कि सन्1960 के पश्चात् आदर्श चेतना भौतिक चेतना व यथार्थ चेतना की ओर उन्मुख होने लगी है । इसी तथ्य का उद्घाटन प्रस्तुत नाटक में किया गया है । भौतिकता की चकाचौंध में अंधी हुई तारा किशोर से कहती है -"हां तुम्हारे ईमान को, तुम्हारे आदर्श को, तुम्हारे सन्यासीपने को सुनकर - जिसने मुझे इस दुनिया की हर चीज़ से वंचित कर दिया है ।"[1] किशोर की आदर्शता उसे चुभने लगती है । "हां मुझसे अब तरस तरस कर नहीं जिया जाता । मुझे जीवन चाहिये जो आराम, रूपये और रेशम के लिए तरसते-तरसते ऐसा बे-रंग रूप न हो जाये जैसे मैं ।"[2]

धनी वर्ग की रानी "नारी स्वतंत्रता" का नारा लगाती है । अपनी झूठी शान को बढ़ाने के लिए "समाज सेवा" के कार्य करती है । धन का सहारा लेकर अपने लेख विभिन्न पत्रिकाओं में छपवाती है ।इस प्रकार अपने दम्भ को सन्तुष्ट करती है और तारा उसकी झूठी चकाचौंध में अंधी होड़ लगाती है और पारिवारिक जीवन को तनावग्रस्त बना लेती है ।

प्रस्तुत नाटक में किशोर आदर्श चेतना से प्रभावित पात्र है । तारा रानी,जयंत धनोवर्ग का प्रतिनिधत्व करने वाले भौतिक-चेतना से प्रभावित हैं । गिरीश यथार्थवादी व्यवहारिक चेतना से युक्त है । इसप्रकार इन नाटक में नाटककार ने बढ़ते भौतिक आकर्षण और उससे प्रभावित पारि-वारिक जीवन,आदर्श,जीवन मूल्यों आदि का चित्रण किया है ।

1- चिराग की लौ - रेवती सरन शर्मा - पृ0-20
2- ,, ,, ,, ,, - पृ0-32

"माटी जाग रे" (1964)

- ज्ञानदेव अग्निहोत्री-

"ज्ञानदेव अग्निहोत्री" हिन्दी के ऐसे सुप्रसिद्ध नाटककार हैं जो अब भारतीय रंगमंच की पहचान बन गये हैं । इन्होंने अपने नाटक यात्रा "नेफा की एक शाम" से प्रारम्भ की और इसी एक नाटक के माध्यम से उन्नति के शिखर पर जा पहुँचे । आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य का यही एक नाटक है जिसको पन्द्रह सौ से अधिक बार मंचित होने का अवसर मिला है और इसी नाटक द्वारा नाटककार पाँच राज्य पुरस्कारों तथा केन्द्रीय सूचना और प्रसारण मंत्रालय का विशेष पुरस्कार से पुरस्कृत हुए हैं । तत्पश्चात् इनके "माटी जाग रे" "शुतुरमुर्ग" आदि नाटक नाट्य जगत में आये । इनके नाटकों में एक ओर गाँव की माटी की सौंधी महक है तो दूसरी ओर राजनैतिक भ्रष्टाचार दूर करने की ललक ।

ज्ञानदेव अग्निहोत्री कृत नाटक "माटी जाग रे" में साठोत्तर कालीन गाँवों में परिलक्षित चेतना को उद्घाटित किया है । आधुनिक युग में उत्तरोत्तर शिक्षा के प्रचार प्रसार ने ग्रामीण जीवन में नई जागरूकता तथा स्वाधिकारों के प्रति चेतना का संदेश दिया है । इस तथ्य को प्रस्तुत नाटक में चित्रित किया है ।

भोला गाँव का सीधा साधा किसान है । वह अनपढ़ है किन्तु समझदार है । भोला का लड़का वसंत पढ़ लिखकर शहर नौकरी करने चला जाता है । भोला की पत्नी गंगा छल,प्रपंचों से दूर निश्छल हृदया नारी है । गाँव का साहूकार दीन दयाल साहू धूर्त,सूदखोर है । वह गाँव के भोले निर्धन, निरीह व्यक्तियों को अपने चंगुल में फँसाकर उनकी अशिक्षा व मजबूरी का लाभ उठाता है लेकिन बसंत व उसके मित्र प्रकाश के शहर से वापिस लौटकर आने पर महाजन की दाल नहीं गलती, इसलिए वह दोनों का कट्टर शत्रु बन जाता है । बसंत व

प्रकाश बिखरे हुए गांव को एकता के सूत्र में पिरो कर गांव की उन्नति व खुशहाली के लिए कृषि के नये नये तरीके बताते हैं, अच्छे बीज और नये औजारों का प्रयोग करते हैं जिसके फलस्वरूप गांव की उन्नति होती है और गांव के लोग जागरूक व चेतन शील बन जाते हैं।

प्रस्तुत नाटक में भोला व गंगा पुरानी पीढ़ी के प्रतीक के रूप में चित्रित हैं जो जाति-पाति को मानते हैं किन्तु शिक्षित बसन्त के समझाने पर अपनी पुत्री रधिया का विवाह निम्न जाति के प्रकाश के साथ करने के लिए तैयार हो जाते हैं और साहू की मृत्यु के पश्चात् उस की पुत्री बिंदिया का विवाह अपने पुत्र बसन्त के साथ तय करते हैं। इस प्रकार नाटक कार ने शिक्षा के आलोक में निरर्थक सामाजिक बंधनो के अंधकार को दूर किया है । शिक्षा ने आधुनिक व्यक्ति के चिन्तन व कार्य कलापों में नई मानसिकता तथा वैचारिकता का समावेश किया है ।

अंत में कहा जा सकता है कि यह नाटक साठोत्तर कालीन ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है । इसके पात्रों का महाजन के प्रति विद्रोह करना, पूंजीपति वर्ग के प्रति निम्न गर्व के विद्रोह को स्पष्ट करता है । नाटक में "आदर्श चेतना" को स्थापित किया है । भोला, वसन्त व प्रकाश आदर्श चेतना से युक्त पात्र हैं ।

-::-

"बिना दीवारों के घर" (तृ०सं०-1976)

- मन्नू भण्डारी

मन्नू भण्डारी का नाम हिन्दी कहानी व उपन्यास विधा के लिए सुप्रसिद्ध तो है ही पर अब नाट्य जगत के लिए भी अपरिचित नहीं रह गया है । इनका एक मात्र नाटक "बिना दीवारों के घर" अपनी सफल अभिव्यक्ति के लिए बहुत चर्चित हो चुका है । आधुनिक व्यक्ति की मन:स्थितियों व वैचारिक द्वंद्व को लेखिका जिस सूक्ष्मता और गहराई से अभिव्यक्त करती है, उसी खूबी से उन्होंने शिक्षिता, स्वाभिमानी नारी के आत्म सम्मान तथा स्वाभिमान को चित्रित किया है ।

शिक्षित ,आत्मनिर्भर नारी स्व अस्तित्व के प्रति जागरूक हो रही है । पति के अत्याचारों को वह मूक बनी अब सहन नहीं करती । अपने स्व अस्तित्व की रक्षा हेतु वह घर की चार दीवारी को भी लांघ रही है । "बिना दीवारों के घर" में लेखिका मन्नू भण्डारी ने इसी आधुनिक सत्य को उद्घाटित किया है । नाटक की नायिका शोभा जब अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होती है तो उसके पति के अहम् पर चोट लगती है । जिसे वह सहन नहीं कर पाता परिणामत: घर बिखर जाता है ।

विवाह पूर्व शोभा केवल दसवीं पास थी । किन्तु बाद में अपने पति अजित द्वारा शिक्षा व संगीत के क्षेत्र में प्रोत्साहित की जाती है । लेकिन शोभा की बढ़ती प्रसिद्धि और व्यस्तता से अजित झुंझला उठता है । वह उसे शंका और तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगता है , और अपने दोस्त जयंत को भी इसमें दोष देता

है । शोभा अपने आत्म-विश्वास के सहारे आगे बढ़ती जाती है । वह घर की देखभाल का, बच्ची को पढ़ाने का-यथाशक्ति ध्यान रखती है । फिर भी उसे पति से बदले में तिरस्कार और अंत में दूरी ही मिलती है । शोभा स्वाभिमानी नारी है । उसका आत्म विश्वास कालेज की प्रिंसीपल बनने के बाद और भी अधिक निखर जाता है । उसके स्वाभिमान को अजित का परम्परागत पौरूष सहन नहीं कर पाता । उसे शोभा का प्रत्येक कार्य गलत और अहम्पूर्ण लगता है । उसे शोभा द्वारा बोला गया स्वाभाविक वाक्य व्यंग्य लगता है । अजित शोभा और जयंत को शंका की दृष्टि से देखता है । उसके इस दुर्व्यवहार से टूटकर शोभा न चाहते हुए भी घर छोड़ने को विवश हो जाती है । शिक्षा और आर्थिक निर्भरता नारी स्वतंत्रता व स्व अस्तित्व की भावना को बढ़ावा देती है । किन्तु पुरूष नारी के उस रूप को स्वीकार नहीं कर पा रहा है । फलत: परिवार में टकराव, अलगाव,तनाव और अंत में टूटन की स्थिति उपस्थित हो जाती है ।

लेखिका ने मीना व जयंत के माध्यम से भी नारी में स्वाभिमान के भाव को उद्घाटित किया है । मीना से विवाह करने के पश्चात् जयंत अपनी स्टेनों से प्रेम करने लगता है । मीना इसे स्वीकार नहीं कर पाती और जयंत से तलाक लेकर "समाज सेवा" के कार्यों में लग जाती है ।

इस प्रकार "बिना दीवारों के घर" में मन्नू भण्डारी ने नारी व पुरूष में बढ़ते समानता के भाव को प्रदर्शित किया है । शोभा आदर्श युक्त "व्यवहारिक चेतना" से प्रभावित है । अजित प्रतिक्रियावादी कुंठित व ईर्ष्यालु पात्र है । जयंत और मीना दोनों "व्यवहारिक चेतना"

से युक्त हैं । जीजी "आदर्श चेतना" से प्रभावित है । उनका चिन्तन व व्यवहार में आदर्शवादी भावना दृष्टिगोचर होती है । वास्तव में अजित "स्वपरक" व्यक्तिवादी चेतना" से अभिप्रेरित है । उसे केवल अपना अहम अपना अस्तित्व ही प्रिय है । लेखिका ने प्रस्तुत नाटक में नारी स्वतंत्रता, आत्म निर्भरता तथा समानता के भाव बोध के आधार पर टूटते परिवार का चित्रण किया है । मध्यम वर्गीय परिवारों की जटिलताओं, समस्याओं, आकांक्षाओं और घुटन को अभिव्यक्त किया है ।

-::-

"रूपया तुम्हें खा गया" (तृ०सं० 1972)

– भगवती चरण वर्मा

साहित्यकार भगवती चरण वर्मा साहित्य की सभी विविधाओं में अपनी गहरी पैठ रखते हैं। जितने वे कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हैं उतने ही उपन्यासकार के रूप में तथा नाटककार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। वर्मा जी ने कई नाटक लिखे हैं जिनमें से (रूपया तुम्हें खा गया" एक है।

यह नाटक एक समस्या मूलक नाटक है। इस नाटक में "अर्थ" के आधार पर मानव के आन्तरिक संघर्ष की कहानी है। आज की भौतिक-वादी प्रवृत्ति ने पारिवारिक सम्बन्धों, प्रेम व रिश्तों को खोखला तथा भावनात्मक शून्यता से भर दिया है। समकालीन व्यक्ति सुख साधनों की होड़ में रूपये को ही अपना धर्म, ईमान तथा भगवान समझता है। वह यह भी भूल गया है कि धन से सुख-सुविधा खरीदे जा सकते हैं किन्तु प्यार, स्नेह, ममता, सन्तोष व शान्ति नहीं खरीदी जा सकती। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने इसी आधुनिक सत्य को उभारा है।

नाटक की कथावस्तु सेठ मानिक लाल की मनःस्थितियों तथा पारिवारिक स्थितियों का चित्रण करती है। सेठ मानिकलाल पहले एक दफ्तर में मामूली सी नौकरी करने वाला कर्मचारी था। जो बाद में दस हजार रूपयों का गबन करके सेठ बन जाता है। उसकी नजर में पैसे से बढ़कर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। उसका कहना है- "जो आदमी ईमानदार और धर्म पर कायम रहता है, वह न ईमानदार कहलाता है न धर्मात्मा कहलाता है। इज्जत और मान उसके

हैं जिनके पास पैसा है ।"[1] सेठ की पत्नी रानी अभावग्रस्त जीवन में पति से प्रेम करती थी । पर करोड़पति बनने के बाद वह भी पैसे से प्यार करने लगती है । पति के अत्याधिक बीमार होने पर भी स्वंय मसूरी चली जाती है । अंत में मानिकलाल अनुभव करता है कि आज तक वह "धन" को महत्व देता रहा जो अनुचित था । वास्तव में उसके पुत्र-पुत्री, पत्नी उससे नहीं "पैसे" से प्रेम करते हैं ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में नाटककार का दृष्टिकोण आदर्शवादी है । नाटककार ने अर्थ पर आधारित सम्बन्धों के खोखलेपन को उजागर कर अत्याधिक धन की निस्सारता को उद्घाटित किया है।

— :: —

1- रूपया तुम्हें खा गया - भगवतीचरण वर्मा - पृ0-55

" आधे - अधूरे " (1969)
- मोहन राकेश

आधुनिक नाटकों के मसीहा मोहन राकेश ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने आधुनिक नाटकों को कथ्य, शिल्प व भाषा के तेवर का अमूल्य उपहार दिया है । उनके तीनों नाटक "आषाढ़ का एक दिन" लहरों के राजहंस और "आधे-अधूरे" हिन्दी नाट्य जगत के देदिप्यमान नक्षत्र हैं । यदि हम समकालीन हिन्दी नाटकों की बात करें और इन नाटकों का उल्लेख न करें तो चर्चा अधूरी रह जायेगी । मोहन राकेश के नाटक व्यक्ति के वैचारिक द्वंद्व को उभारते हुये, मानव मूल्यों व जीवन मूल्यों की तलाश में भटकते से लगते हैं ।

उनका नाटक "आधे-अधूरे" वर्तमान जीवन की विडम्बनाओं व जटिलताओं को रेखांकित करता है । यह मध्यमवर्गीय जीवन के आर्थिक संकट मूल्यहीनता, तनाव व कुंठा का प्रमाणिक दस्तावेज़ है ।

नाटक की कथावस्तु ,मध्यम वर्ग से निम्न मध्यम वर्ग के स्तर पर पहुँचे हुए परिवार को केन्द्र बनाकर चली है । परिवार में बेकार, लिजलिजा, आत्मविश्वासहीन,कुंठित पति महेन्द्रनाथ है । अपने पति से असन्तुष्ट, घर के स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयत्न से टूटी हुई, पत्नी सावित्री है जो "पूर्ण पुरूष" की तलाश में भटकती है और शिव जीत, जगमोहन,मनोज,जुनेजा आदि पुरूषों में "पूर्ण पुरूष" को तलाशते तलाशते निराश हो गई है । अपनी माँ के प्रेमी के साथ भागी हुई बड़ी लड़की बिन्नी है । युवा, बेकार, विक्षिप्त सा लड़का अशोक है जो अभिनेत्रियों की तस्वीरें काटता रहता है । सैक्स संबंधी पुस्तकें पढ़ता है और आवारा की तरह घूमता रहता है । छोटी लड़की बिन्नी है । वह किशोरावस्था में ही सैक्स संबंधी चर्चा करती है और जिद्दी है । नाटक की सम्पूर्ण कथा इन्हीं लोगों के इर्द-गिर्द घूमती है । सावित्री, अशोक को नौकरी दिलाने के लिए बॉस सिहानियाँ

कोखुश रखती है । परन्तु बदले में उसे पति और बेटे-बेटियों से तिरस्कार मिलता है । घर व पति के वातावरण से घुटी सावित्री जगमोहन के साथ जाने का निश्चय करती है । लेकिन जगमोहन उसकी प्रौढ़ावस्था को देखकर इन्कार कर देता है । नाटक का अंत कुंठित, त्रस्त सावित्री व महेन्द्रनाथ के लौट आने से होता है ।

इसप्रकार प्रस्तुत नाटक में मध्यवर्गीय पारिवारिक विघटन, संबंधों की टकराहट तथा उससे उत्पन्न कड़वाहट को शक्तिशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है । समस्त परिवार काल्पनिक आदर्श की तलाश में भटकता व टूटता रहता है । फिर भी विडम्बना यही कि सभी एक साथ रहने को विवश हैं । बड़ी लड़की बिन्नी भाग जाती है, फिर उसी घर में लौट आती है , क्योंकि अपने साथ इस घर से "कुछ चीज़" वह साथ लेकर गई है जो मनोज के साथ उसे रहने नहीं देती ।

प्रस्तुत नाटक में बौद्धिकता से उत्पन्न कुंठित मनस्थितियां ही चित्रित है, पात्रों में "चेतना" दृष्टिगोचर नहीं है । डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में -"नाटकों के पात्रों में सावित्री, पति ,पुत्र-पुत्री तथा सावित्री के तलाश के आदमी, सभी अन्तर्द्वन्द्व ,कुंठा, संत्रास से भीतरी बाहरी संघर्ष करते हैं ।"[1]

इस नाटक में आधुनिक जटिलताओं से उत्पन्न मनःस्थिति, संवेदनाएं यथार्थ रूपेण अभिव्यक्त हुई हैं ।

-::-

1- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृ०-136 -
हिन्दी साहित्य का इतिहास

"अपनी कमाई" (1969)

- राजेन्द्र कुमार शर्मा

राजेन्द्र कुमार शर्मा एक सफल हास्य नाटककार हैं । इन्होंने अनेकों मंचीय नाटक और दर्जनों रेडियो नाटक लिखकर नाट्य जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है ।

इनका नाटक "अपनी कमाई" साठोत्तर समाज में व्याप्त रिश्वत खोरी, जैसी बुराइयों पर का कुप्रभाव चित्रित किया है । "भौतिक चेतना" के तीव्र होने से मध्यम वर्गीय व्यक्ति अपने सुख-साधनों की प्राप्ति हेतु अनैतिक कार्य को करने में भी नहीं हिचकिचाता । प्रस्तुत नाटक में नाटक कार ने इसी तथ्य को उद्घाटित किया है ।

मिस्टर वर्मा एक सरकारी अफसर है । वह रिश्वत लेकर अपने घर को भरता है । उसकी पत्नी रमा व नौकर काका के मना करने पर भी वह रिश्वत लेने से बाज़ नहीं आता । मिस्टर वर्मा अत्याधुनिक युवती चन्दा से सम्पर्क बनाये रखता है किन्तु जब उसका लड़का राजू बीमार पड़ता है तो उसके विचार बदल जाते हैं।

इस नाटक में नाटककार ने "भौतिक चेतना" के कारण बदलते दृष्टि-कोणों के साथ साथ बदलती नैतिकता को भी चित्रित किया है । बौद्धिकता से प्रभावित व्यक्ति प्रत्येक तथ्य को तर्क के माध्यम से अपने अनुरूप बनाकर अनुचित कार्य को उचित सिद्ध कर रहा है ।रमा द्वारा रिश्वत के लिए मना करने पर मिस्टर वर्मा कहते हैं -"भक्ति क्यों की जाती है । साधना व अराधना बिना मतलब नहीं होती । त्याग और तपस्या इसलिए की जाती है कि जो इस जन्म में त्याग दिया है वह अगले जन्म में मिलें ।"[1]

नाटक के पात्र मिस्टर वर्मा "भौतिक चेतना" से प्रभावित हैं । वह धन को ही अपना ईमान, धर्म व सब कुछ समझते हैं । उसकी पत्नी रमा व काका "आदर्श चेतना" से युक्त हैं । चन्दा भौतिक चेतना से प्रभावित है । नाटक के अंत में मिस्टर वर्मा का आदर्श बनना - नाटककार की आदर्श चेतना में आस्था का परिचायक है ।

1- अपनी कमाई - राजेन्द्र शर्मा - पृ0-45

"भूमि की ओर"§ 1969
- डा० सुरेश चन्द्र "शुक्ल"

डा० चन्द्र का नाटक "भूमि की ओर" ग्रामीण समस्याओं पर आधारित है । यह नाटक शिक्षित युवकों को ग्रामोन्नित के लिए आह्वान करता है । इसमें शहरी और ग्रामीण वातावरण की तुलना करते हुए ग्रामीण वातावरण को स्वस्थ एवं सुखद माना है । यद्यपि गांवों में अभी भी कुप्रथाएं, रूढ़ियां, आपसी वैमनस्य तथा शोषण व्याप्त है लेकिन उन्हें शिक्षा व समझदारी के आलोक में दूर किया जा सकता है ।

नाटक के प्रथम अंक में संकट ग्रस्त मंहगाई व आवास समस्या से त्रस्त शहरीय जीवन की झांकी प्रस्तुत की है तथा नाटक की नायिका पूर्णिमा द्वारा जगदीश जैसे निराश ,टूटे और तनावग्रस्त व्यक्ति को "भूमि की ओर" प्रेरित किया गया है । दूसरे अंक में गांव में फैली रूढ़ियों, अंध-विश्वासों व आपसी द्वेष की स्थिति का चित्रण किया है । तीसरे अंक में नवनिर्मित , उन्नतिशील गांव का चित्रण है । जगदीश शिक्षित होकर शहर में क्लर्क बन जाता है । उसकी पत्नी व बच्चे गांव में उसके छोटे भाई कैलाश के साथ रहते हैं । अपने भाई व उसके पत्नी और बच्चों के बोझ से चिढ़ा हुआ कैलाश अपनी भाभी पर अत्याचार करता है । इस खबर से जगदीश विक्षुब्ध हो जाता है । पूर्णिमा अपने जीजा जी को गांव की ओर अभिप्रेरित करती है । शिक्षित पूर्णिमा कृषि में एम०एससी है । वह भी जगदीश के साथ गांव में जाकर ग्रामीण उत्थान में लग जाती है । गांव में उन्हें अनेक कठिनइयों का सामना करना पड़ता है । यहां तक कि पूर्णिमा कृषि से अनभिज्ञ तथा द्वेष से भरे भाग्यवादी कैलाश को , सरस, सहृदय तथा कर्मठ बनाती है । हीरू के समान दुख से पागल व्यक्तियों को चेतनशील बनाती है । और अंत में उन दोनों की लगन और परिश्रम शीलता से पूरा गांव खुश हाल तथा सम्पन्न बन जाता है ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में किसी एक गांव की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत के गांवों की यथार्थ स्थिति व सम्भावनाओं को उद्घाटित किया है । इसमें ग्रामीण समस्या के साथ साथ बढ़ती जन-संख्या, बेकारी, खाद्य संकट, परस्पर द्वेष भावना आदि समस्याओं को उद्घाटित किया है । और इनका समाधान भी "भूमि" की सेवा में निहित है । ग्रामोद्धार तथा उन्नति द्वारा ही इन समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है - ऐसा नाटककार का विश्वास है । यदि शिक्षित युवा पीढ़ी गांव की ओर उन्मुख हो तो जहां एक ओर बेरोज़गारी की समस्या का समाधान हो सकता है, वहीं दूसरी ओर गांव का उद्धार व देश उन्नतिशील हो सकता है ।

प्रस्तुत नाटक में पूर्णिमा व प्रवीण आदर्श चेतना से युक्त पात्र हैं जो जन-साधारण में चेतना को संप्रेषित करते हैं ।

-::-

Smt. HANSA MEHTA LIBRARY
THE M. S. UNIVERSITY OF BARODA

"न धर्म न ईमान" (1970)

- रेवती सरन शर्मा

"न धर्म न ईमान" नाटक में नाटककार ने हिन्दू धर्म की सामाजिक कुमान्यताओं एवं जड़रूढ़ी, परम्पराओं पर प्रहार किया है। प्राचीन परम्पराएं एवं विश्वास आज बौद्धिक युवा पीढ़ी के समक्ष बेमानी होकर टूटरहे हैं। समकालीन युवा पीढ़ी ऐसी किसी भी मान्यता को मानने के लिए तैयार नहीं है जो निरर्थक व ब्राह्याडम्बर से युक्त हो। इस दिशा में शिक्षा, वैज्ञानिकता तथा पाश्चात्य सभ्यता ने नया मोड़ उपस्थित किया है। नई वैचारिकता प्रदान की है।

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने मानव जीवन के लिए शाश्वत् आधार "प्रेम" के परिपेक्ष्य में बदलती सामाजिक मान्यताओं व व्यक्तिगत स्वतंत्रता को उद्घाटित किया है। दिनेश बचपन से ही दूर के रिश्ते में लगनेवाली बहन दया को प्रेम करता है। वह उससे विवाह भी करना चाहता है किन्तु पुराने विचारों व विश्वासों को मानने वाली दिनेश की दादी बाधा बन जाती है। दिनेश का पिता असहाय हो जाता है। न तो दिनेश का विरोध करता है और न ही अपनी माँ को समझा पाता है। दादी के कहने पर दया का विवाह अधेड़, विधुर रामदयाल से कर दिया जाता है। इस संबंध से दुखी दया टी0बी0 की मरीज बन जाती है। वह मृत्यु के कगार पर पहुंच जाती किन्तु दिनेश के प्रयास व रक्तदान से दया नया जीवन प्राप्त करती है। और साहस से दिनेश को स्वीकार करके पति को त्याग देती है क्योंकि वह जान जाती है किउसका पति स्वार्थी, अयोग्य व कायर है। इस प्रकार नाटककार ने आदर्श प्रेम का चित्रण किया है। श्री नर नारायण लाल के शब्दों में -"यह मानवीय

प्रकृति रही है कि उसने सिसक-सिसक कर मरने की बजाय साहस से स्वतंत्र होकर जीने को सदा सराहा है ।" यही वह बिन्दु है जहाँ नाटक "जैसा है" की स्थिति से "जैसा होना चाहिये" की ओर आगे बढ़ जाता है , नाटक का अन्त उसका प्रमाण है ।"[1]

इस प्रकार नाटक कार ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा आदर्श चेतना के आधार पर जीवन में विष घोलती रूढ़ सामाजिक परम्पराओं व मान्यताओं को तोड़ा है । नाटक के पात्र दिनेश व दया "आदर्श युक्त व्यावहारिक चेतना" से प्रभावित हैं । दादी, पुरानी पीढ़ी की प्रतीक अंधविश्वासी है ।

-:::::-

1- न धर्म न ईमान - रेवती शरण शर्मा - पृ0-48

"वाह रे इन्सान" (1970 में खेला गया)
- रमेश मेहता

रेडियो नाटकों तथा हास्य नाटकों के लिए रमेश मेहता का विशिष्ठ स्थान है । इनके नाटक हास्य की आड़ में जीवन की जटिलताओं विषमताओं तथा परम्परागत रूढ़ियों पर करारा प्रहार करते हैं।

प्रस्तुत नाटक "वाह रे इन्सान" में नाटककार ने विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों की मन:स्थितियों का चित्रण किया है । भीखू, धन सेवक, क्रान्ति, वकील , डाक्टर , सम्पतराय आदि पात्र अलग अलग वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति हैं ।

निम्न वर्ग की पुरानी पीढ़ी का प्रतीक भीखू उच्च वर्ग द्वारा किये गये उत्याचारों को कर्मों का फल मानकर अपने मालिक सम्पतराय के प्रति आजीवन वफादार बना रहता है । किन्तु अंत में उसे उपकार का बदला मिलता है सिर्फ "मौत" । "यथार्थवादी चेतना" से प्रभावित डाक्टर व वकील, जिन्दगी भर सम्पतराय को ठगते रहे । धनसेवक तथा क्रान्ति एक ही वर्ग मध्यम वर्ग में प्रतिनिधित्व करते हैं । धनसेवक चापलूस लिजलिजा ,स्वार्थी, यथार्थवादी "व्यवहारिक चेतना" से युक्त है , जबकि क्रान्ति अत्याचार के प्रति विद्रोह करने वाला, मजदूरों व गरीबों का हमदर्द, निडर, आदर्शयुक्त, "व्यवहारिक चेतना" से प्रभावित है । तुलसी निम्नवर्ग की युवा पीढ़ी की प्रतीक है । वह अपने मालिक सम्पत राय से टक्कर लेती है । वह आदर्श चेतना से युक्त चेतनशील नारी है । सम्पतराय धनीवर्ग का प्रतीक विलासी, अत्याचारी सेठ है । किन्तु दिखावे के लिए धर्मात्मा बना है । धर्मशाला तथा अस्पताल ,स्कूल आदि खुलवाता है । लेकिन मजदूरों को कीड़ा मात्र समझता है । क्रान्ति जब

उसके अत्याचारों के विरूध आवाज उठाता है तो उसे गिरफ्तार करवा देता है । नाटककार ने यहाँ स्पष्ट किया है कि सम्पतराय जैसे धनी व्यक्ति कानून व समाज को खरीद लेते हैं और उसका अपने हित के लिए प्रयोग करते हैं ।

आधुनिक युग में भौतिकता के प्रभावित व्यक्ति नैतिक व पारिवारिक मूल्यों को नकार रहा है । धनसेवक ऐसा ही पात्र है जो धन के लालच में अपनी पत्नी जानकी को सम्पतराय, डाक्टर व वकील जैसे भेड़ियों के समक्ष शरीर नुचवाने के लिए छोड़ देता है । धन के समक्ष यह पाप-पुण्य,पवित्रता आदि को निरर्थक मानता है ।

नई पीढ़ी के तुलसी व क्रान्ति धनी वर्ग द्वारा किये गये अत्याचारों को सहन नहीं करते । वह मालिक को उसके किये की सजा देने में विश्वास रखते हैं । इस प्रकार नाटककार ने आधुनिक पीढ़ी की जागरूक शक्ति को स्पष्ट किया है । युवा पीढ़ी पुराने अंधविश्वासों, सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ रहे हैं ।

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने मध्यम वर्ग की अंधी दौड़ को भी उद्घाटित किया है । धन सेवक अन्दर से टूटा हुआ, तिलमिलाता है, घुटता रहता है ,लेकिन धन प्राप्ति हेतु ,धनी वर्ग का चापलूस बना रहता है । मुंह पर मुस्कुराने का मुखौटा चढ़ायें रहता है । इसप्रकार प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने भौतिक वादी चेतना से प्रभावित समकालीन व्यक्ति की टूटती "नैतिकता,मूल्यहीनता को उजागर किया है "साथ ही तुलसी व क्रान्ति के माध्यम से आदर्श चेतना के स्थान पर आदर्शयुक्त व्यवहारिक चेतना" को स्थापित किया है और नई पीढ़ी की चेतना को स्पष्ट किया है ।

-::::-

"चारपाई" ﴾नटरंग 26 अंक﴿
- रामेश्वर प्रेम

"रामेश्वर प्रेम कृत नाटक "चारपाई" समकालीन व्यक्ति की संगतियों-विसंगतियों के साथ साथ महानगरीय जीवन की आवास समस्या को भी चित्रित करता है । यह नाटक मध्यम वर्गीय परिवार की आर्थिक संकट व आवास समस्या से प्रभावित नैतिकता और मानसिकता को अभिव्यक्त करता है । मध्यम वर्गीय परिवार आधुनिक जटिलताओं से टूट रहे हैं । परिवार में परस्पर स्नेह का भाव घटता जा रहा है और वे एक दूसरे के लिए बोझ समान अजनबी से बने हुए हैं । पारिवारिक मधुरता का स्थान खीज, आतंक ,झुंझलाहट तथा आशंकाएं ले रही हैं और पति पत्नी का प्रेम औपचारिकता मात्र रह गया है ।

नाटक में खपरेल की छत, ठूंठ ,सूखी एवं झुकी हुई टहनियां, गन्दे कपड़ों का गट्ठर आदि संकेत आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं, असंगतियों-विसंगतियों को सम्पूर्ण रूप से उद्घाटित करते हैं। नाटक का प्रारम्भ देर रात तक" होने का संकेत भी जीवन की विसंगति को ही उदघाटित करता है । नाटक के पात्र - बूढ़े आदमी, बूढ़ी स्त्री , प्रौढ़ स्त्री-पुरूष , तेरह साल की शीलू और दस साल का छोटू - ये सब एक कमरे में ठुसे हुए हैं । जहां न नींद है और न आराम बल्कि चिन्ता है कि कल बाबू जी आयेंगे तो चारपाई कहां बिछेगी । स्त्री का बात-बात में चिढ़ना, पुरूष का झुंझलाना व उसके स्वभाव को दोष देना, बच्चों को नींद न आना, स्त्री का उन पर चिल्लाना, शीलू का भुनभुनाते हुए गठ्ठर तक पहुंचने के लिए घोड़ी बनना, छोटू का कमरे में पेशाब करना ,तथा चारपाई के नीचे दुबक जाना आदि तथ्य-मानसिक विकृति, विवशता तथा संघर्षरत जीवन की तीखी अभिव्यंजना करते हैं ।

नाटक के अंत में बूढ़े की घुटन व अकेलेपन की ऊब फूट पड़ती है । उसे सम्बन्धों की जड़ता में मौत का सा एहसास होता है । और बूढ़ा अपने अस्तित्व के लिए बेचैन हो जाता है । "क्या यहां मैं हूं केवल ? क्या मैं ही यह फैला हुआ अंधेरा हूं ? क्या मैं ही पीठ पर लदा रहता हूं "----------- इस प्रकार बूढ़ा परिवार से उपेक्षित अपने अस्तित्व के लिए चिन्तन करता है । उसके अकेलेपन का किसी को एहसास नहीं । केवल बूढ़ी यदा-कदा उससे बात करती है । बूढ़े को मौत और "चारपाई" को बांध कर पटकने के साथ ही नाटक का अन्त हो जाता है ।

इसप्रकार यह सम्पूर्ण नाटक निम्न मध्यम वर्गीय व्यक्ति की जीवन को जीने की कोशिश, साम्बन्धों की रिक्तता, घुटन को यथार्थ रूप से अभिव्यक्त करता है । महानगरीय जीवन एक ओर आर्थिक संकट से जूझ रहा है तो दूसरी ओर आवास समस्या ने उसे तोड़ दिया है । समाज में नैतिक व सामाजिक मूल्य नाटक में चित्रित गन्दे कपड़े के गठ्टर के समान हो गये हैं । इस नाटक के सम्पूर्ण पात्र अपनी सीमाओं से जकड़े हुए निष्क्रिय हैं । वे मूक दर्शक बने जीवन की विडम्बनाओं व जटिलताओं को झेल रहे हैं । उनसे विद्रोह नहीं करते, छुटकारा पाने का प्रयत्न भी नहीं करते । केवल बूढ़ा पात्र ही अपने अस्तित्व के प्रति सचेत है । चारों ओर के वातावरण से विक्षुब्ध हुआ अपने को खोज रहा है ।

-:::::-

"कृति-विकृति"(19)
- ना०ग०बोड्स

"कृति-विकृति" नाटक आधुनिक युग में तीव्रतर होती महत्वाकांक्षाओं के परिपेक्ष्य में पति-पत्नी के बीच चौड़ी होती दरारों को चित्रित करता है । नाटक के प्रारम्भ में विनोद व रेखा का दाम्पत्य जीवन सहज रूप से चल रहा था किन्तु विनोद महत्वाकांक्षी शिक्षक है । इसीलिए प्रत्येक क्षण कपूर से आगे निकलने में पत्नी रेखा की अवहेलना करता है । उसे भौतिकता कीदौड़ में हराने के लिए दिन-रात परिश्रम करता है । यद्यपि वह परिश्रमशील कम है फिर भी अहम् भाव के कारण पूरी तरह व्यस्त रहना चाहता है । अहम् भाव से प्रेरित विनोद की अध्ययन शील प्रवृत्ति के कारण रेखा अपने को उपेक्षित अनुभव करती है । वह अनेकानेक कुण्ठाओं से भर जाती है । और अंत में समाज सेवा की ओर उन्मुख होकर अपने स्वाभिमान को बनाये रखती है । उसका देर से घर आना, मीटिंग में व्यस्त रहना आदि बातों को विनोद सहन नहीं कर पाता । वह रेखा को घर पर रहने की सलाह देता है किन्तु रेखा उसे अपना "केरियर" कहकर "पीछे लौटने" से मना कर देती है । परिणामस्वरूप परिवार विघटन के कगार पर पहुंच जाता है ।

प्रस्तुत नाटक में बौद्धिकता,शिक्षा के कारण टूटते पारिवारिक जीवन को चित्रित किया है । जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि साठोत्तर काल में नारी में स्वाभिमान व स्वास्तित्व की भावना का उत्तरोत्तर विकास हो गया है । अब वह प्राचीन मान्यताओं व नैतिकता को अपने विकास में बाधक मानकर उन्हें तोड़ने में संकोच नहीं

करती है । रेखा भी ऐसी ही जागरूक एवं चेतनशील नारी है ।इसलिए पति द्वारा उपेक्षित होने पर चुपचाप सहन नहीं करती, अपितु स्वाभिमान की रक्षा करते हुए स्वंय को "कुछ करने लायक" बनाती है । लेकिन पुरूष का अहम् इसे भी सहन नहीं कर पाता । जिसके फलस्वरूप परिवार में टकराव की स्थिति उपस्थित हो जाती है । पारिवारिक स्नेह, वात्सल्य तथा सामाजिक मूल्य भी इस टकराहट से बिना प्रभावित हुए नहीं रहते हैं । आधुनिक अंधी दौड़ में प्रतिद्वंद्वी स्वंय आप ही है । जिसने स्वंय को चकित एवं शिथिल बना दिया है ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में "वैयक्तिक चेतना" से प्रभावित बौद्धिकता से प्रभावित मध्यमवर्गीय परिवारों की मनःस्थितियों, विद्रूपताओं तथा बदलते पारिवारिक मूल्यों को अभिव्यक्त किया है । रेखा समकालीन शिक्षित, जागरूक, स्वाभिमानी नारी वर्ग का प्रतीक है जो घर तथा स्वंय को बनाये रखने में तत्पर है किन्तु समाज या पति द्वारा उपेक्षित हो स्वाभिमान की रक्षा हेतु उसी परिवार को तोड़ने में नहीं हिचकती । रेखा आदर्शयुक्त चेतना से युक्त थी, जो बाद में उपेक्षित होने पर "व्यवहारिक चेतना" की ओर उन्मुख होती है । विनोद यथार्थवादी "व्यवहारिक चेतना" से प्रभावित है । इसप्रकार प्रस्तुत नाटक में बौद्धिकता के कारण टूटते परिवार, तथा धूमिल होते प्रेम, माधुर्य , वात्सल्य को उद्घाटित किया है ।

-:::::::-

"मिस्टर अभिमन्यु" (1971)

- डा० लक्ष्मीनारायण लाल

समकालीन नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा उसमें फंसे व्यक्तियों की द्वंद्वात्मक स्थिति को अभिव्यक्ति के देने वाला डा०लाल का नाटक "मिस्टर अभिमन्यु" है । प्रस्तुत नाटक का कथानक महाभारत के प्रसिद्ध चरित्र अभिमन्यु को लेकर रचा गया है । लेकिन यहाँ अभिमन्यु से पूर्व "मिस्टर" लगाकर नाटककार ने आधुनिक बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य किया है । साथ ही इसे आधुनिक संदर्भों से भी जोड़ा है । पौराणिक अभिमन्यु वास्तव में चक्रव्यूह से निकलना चाहता था किन्तु "मिस्टर अभिमन्यु" नौकरशाही के चक्रव्यूह से निकलने का ढोंग मात्र करता है । क्योंकि उसे ज्ञात है कि अन्दर घुटन है तो सुरक्षा भी है, किन्तु बाहर स्वतंत्रता है तो मृत्यु भी है । उस स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए भौतिक सुख-साधनों, ऐश्वर्यों के बलिदान की आवश्यकता है ,जिसे आज का अभिमन्यु नहीं दे सकता । डा० दयाशंकर शुक्ल के शब्दों में -"मिस्टर अभिमन्यु चरित्र के स्तर पर आज के वेतन भोगी और सुविधाभोगी मनुष्य की विडम्बनाओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है । जीवन की गहनतम अनुभूति कराने के लिए ऐसे यथार्थ चरित्र-चित्रण की आज आवश्यकता है जो काल्पनिकता, अस्वाभाविक भावुकता और अशरीरी छायावादिता से बचाव दे सकें । "मिस्टर अभिमन्यु" का राजन ऐसा ही चरित्र है ।"[1]

नाटक की कथावस्तु कलक्टर राजन के इर्द गिर्द घूमती है । राजन् ईमानदार और आदर्शवादी कलक्टर है । उसकी नियुक्ति एक

1- लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक और रंगमंच - डा० दयाशंकर शुक्ल पृष्ठ-109

बिगड़े जिले में होती है ,जिसमें केजरीवाल जैसा इन्कमटैक्स चोर सेठ है और गयादत्त जैसा धूर्त्त नेता है । "बाई इलेक्शन" में राजन का तनिक भी सहयोग नहीं होता, फिर भी उसमें राजन् की सहायता घोषित कर उसे पुरस्कार स्वरूप "कमिश्नरी" प्रदान की जाती है । जो वास्तव में उसे भ्रष्टाचार के चक्रव्यूह में फंसाने का षड्यन्त्र होती है । राजन समस्त गतिविधियों के परिचित हो, नौकरी से त्यागपत्र देना चाहता है किन्तु उसके पिता जो दुनियादारी जानते हैं,उसे उन्नतिशील देखना चाहते हैं तथा उसकी पत्नी विमल अपने प्रेम विवाह के प्रतिदान के रूप में सुख ऐश्वर्य मानती है । दोनों राजन को त्यागपत्र देने से रोकते हैं । नाटक में आत्मन् व गयादत्त पात्रों के माध्यम से राजन् के ही दो पहलू चित्रित किये हैं। आत्मन् ईमानदार अन्याय विद्रोही, समाज सेवी, तथा गयादत्त से विरोध करने वाला नेता है । वह राजन् के आदर्श तथा भ्रष्ट नौकरी के प्रति आक्रोश व्यक्त करने वाला पक्ष है,तो गयादत्त विलास भोगी, भ्रष्टाचारी, षड्यन्त्र में लिप्त है जो ऐश्वर्य के साथ रहने वाले राजन् का दूसरा पक्ष है । राजन् कीपत्नी विमल उच्च वर्गीय सम्पन्नता को ही जीवन की उपलब्धि मानती है । उसमें बौद्धिक चिन्तन का अभाव है इसीलिए वह राजन् के द्वंद्व को नहीं समझ पाती और पति से अलग कटी सी अपनी साड़ियों, पार्टियों, बैंक बैलेंस व कार, फ्रिज की दुनिया में मग्न रहती है । पिता अपने स्वार्थ वश राजन् को उन्नति करता देखना चाहता है चाहे वह उन्नति कैसे भी प्राप्त हो । किन्तु राजन् आदर्शवादी है । इसलिए उसके व पिता के बीच अलगाव सा बना रहता है । इसप्रकार आधुनिक अभिमन्यु भी पौराणिक अभिमन्यु के समान अपनों के बीच में रहते हुए भी अकेला पड़ गया है । वह अनिश्चित लड़ाई लड़ता रहता है परन्तु चक्रव्यूह तोड़कर

बाहर आने की अदम्य इच्छा नहीं है, जितनी पौराणिक अभिमन्यु में थी । इसीलिए राजन् मि0 अभिमन्यु है ।

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक आधुनिक व्यक्ति को बेनकाब कर देने वाला नाटक है । आज व्यक्ति कीकथनी करनी में अन्तर आ गया है । वह आदर्शवादी भी बना रहना चाहता है साथ ही ऐश्वर्य, सुख-सुविधा भी प्राप्त करना चाहता है । जो उसे आत्मन् (स्वंय) की हत्या के बाद ही प्राप्त हो सकती है । प्रस्तुत नाटक में नाटककार का उद्देश्य उन बुद्धिजीवियों का तथा स्वंय की ईमानदारी व आदर्शवादिता का ढोंग रचते हुए स्वेच्छा से उस व्यवस्था में सहयोग देते हैं।

नाटक में आधुनिक युग में बढ़ते भौतिकता के प्रति आकर्षण को व्यक्त किया है । राजन् 'आदर्श-चेतना' से प्रभावित लगता है किन्तु उसमें सुदृढ़ता नहीं है । इसलिए उसका व्यक्तित्व लिजलिजा है । राजन् की पत्नी विमल भौतिक चेतना से प्रभावित है । पिता 'व्यवहारिक-चेतना' से युक्त पात्र है । गयादत्त नेता व सेठ केजरीवाल 'व्यवहारवादी' चेतना' से प्रभावित हैं । आत्मन् आदर्श चेतना से युक्त पात्र है ।

-:::::-

"मरजीवा" (1972)

– मुद्राराक्षस

विचित्र्य कथ्य, तीखे व व्यांग्यात्मक संवाद तथा झकझोर देने वाली मानवीय मन:स्थिति को नाटकों में स्थान देने वाले "मुद्राराक्षस" नाटक साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान बना चुके हैं । इनके नाटक समाज में छिपे, दबे, ढके पक्षों को उद्घाटित कर समाज की एक दूसरी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं।

मुद्राराक्षस के नाटक तीखी सपाट संवाद रचना में मानवीय क्रूरता, विकृत यौन वृत्ति, वर्ग संघर्ष को उद्घाटित करते हैं । उनके नाटकों में सामाजिक और राजनैतिक विसंगतियों पर जहां तीखा व्यंग्य होता है, वहीं चुभती हुई सच्चाई भी होती है । ऐसा ही उनका नाटक "मरजीवा" है, जिसमें राजनैतिक व सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार ,ढोंग और बेईमानी को उजागर किया गया है व्यक्ति आधुनिक संगतियों-विसंगतियों में इतना फंस गया है कि वह न तो अपनी मर्जी से जी सकता है और न ही मर सकता है ।

नाटक का नायक "अदर्श" शिक्षित बेरोज़गार युवक है । बेरोज़गारी से तंग आकर वह और उसकी पत्नी भूमि आत्महत्या करना चाहते हैं । आदर्श स्वंय अपनी पत्नी व पागल पिता को नींद की गोलियां दे देता है । दूसरे दिन उसका पिता मरा हुआ मिलता है । वह और भूमि बच जाते हैं । आदर्श दोबारा करंट लगाकर आत्महत्या का प्रयास करता है । इसमें उसकी पत्नी भूमि मर जाती है, बिजली फेल हो जाने के कारण वह फिर बच जाता है । अपना अपराध स्वीकार कर वह जेल चला जाता है । जेल में पुलिस

आफिसर उसके सामने ही एक नक्सलवादी की हत्या कर देता है । वह आदर्श को अपना गवाह बनाना चाहता है और इसी शर्त पर उसे रिहा करने को तैयार हो जाता है । लेकिन आदर्श के मना करने पर वह उसे पागल घोषित कर देता है । भूतपूर्व मिनिस्टर अपने विरोधी पारस के विरूद्ध षड्यन्त्र उसे मोहरे के रूप में इस्तेमाल करता है । और उसे जिन्दा जला देता है ।

इस प्रकार इस नाटक में बेरोज़गार आदर्श द्वारा देश में बढ़ती बेरोज़गारी की समस्या को उद्घाटित किया । पाखण्डी नेता शिवधर गंजे के माध्यम से राजनैतिक भ्रष्टाचार, देश व्यापी अव्यवस्था, पुलिस का अत्याचार आदि को चित्रित किया है । मर जीवा नाटक में नाटककार का उद्देश्य समाज में फैली बुराइयों के विरूद्ध आवाज बुलन्द करना है ।

-::::::-

" एक और द्रोणाचार्य" (द्वितीय सं0-1980)
- शंकर शेष

डा0 शंकर शेष 1956 से ही रंगमंच से जुड़ गये और अपने अनेक नाटकों द्वारा नाट्यविद्या को समृद्ध करते रहे हैं। इन्होंने लगभग दो दर्जन नाटक, कई एकांकी, उपन्यास और कहानियां लिखी हैं। तात्पर्य यह है कि डा0 शंकर शेष साहित्य की कई विधाओं में अपनी कृतियों के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दे चुके हैं। "बिन बाती के दीप", "मूर्तिकार", बंधन अपने अपने0, "फंदी", "खुजराहो का शिल्पी", "एक और द्रोणाचार्य", अरे! मायावी सरोवर, घरौंदा, रक्तबीज, "चेहरे", "पोस्टर", "कोमल गांधार, बेटों वाला बाप, तिल का ताड़, आदि कई सफल नाटक हिन्दी रंगमंच को दे चुके हैं। इनके नाटक आधुनिक व्यक्ति की त्रासदी व वैचारिक द्वंद्व को सफलतापूर्वक उद्घाटित करते हैं, इसीलिए डा0 शेष पुरस्कृत भी हो चुके हैं।

शंकर शेष कृत "एक और द्रोणाचार्य" नाटक आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, राजनीति, मूल्यहीनता तथा अनैतिकता को चित्रित करता है। इस नाटक का कथानक मध्यम वर्गीय जीवन की आकांक्षाओं, अभिलाषाओं की-आदर्श, नैतिकता एवं कर्तव्य से टकराहट में टूटते मूल्यों को केन्द्र मानकर चला है। नाटककार ने पौराणिक मिथक का उपयोग कर महाभारत कालीन गुरू द्रोणाचार्य के जीवन की घटनाओं में समकालीन शिक्षकों व शिक्षा प्रणाली का सामंजस्य स्थापित किया है।

नाटक का नायक अरविन्द आदर्शवादी विचारधारा का पोषक है । किन्तु उसकी पत्नी लीला दुनियादारी के साथ साथ अपनी इच्छाओं की पूर्ति अरविन्द द्वारा करना चाहती है । इसलिए अरविन्द न चाहते हुए भी प्रिंसीपल का पद ग्रहण कर अध्यक्ष को कठ-पुतली मात्र बनकर रह जाता है । उसकी आत्मा विद्रोह करती है किन्तु उसकी पत्नी व मित्र उसे कुछ भी करने से रोकते हैं । इस कथानक के साथ साथ द्रोणाचार्य की कथा को भी अरविन्द के स्वप्न के माध्यम से दर्शाया गया है । स्वप्न में विमलेन्दु अरविन्द को द्रोणा-चार्य के आर्थिक संकट से ग्रस्त परिवार के बारे में बताता है कि किस प्रकार उसकी पत्नी अपने एकमात्र पुत्र को दूध के स्थान पर आटा घोलकर पिलाती है । बाद में दुर्योधन के यहाँ दूध का स्वाद ज्ञात होने पर पुत्र अश्वत्थामा सोचता है कि मुझे दूध के स्थान पर दूसरी वस्तुत दे दी गईथी । पत्नी के कहने पर विवश होकर द्रोणाचार्य पाण्डवों को ट्यूशन पढ़ाता है, अपने आदर्श को त्याग देता है । उसी प्रकार आज का शिक्षिक मंत्री-पुत्रों और गुंडों को विवश होकर ट्यूशन पढ़ाता है । अपना आत्म सम्मान त्यागकर, अपराधियों को दण्डित न करके, उनका साथ देता है । उनके आगे पीछे घूमता है ,देखते हुए भी नकल करने वाले विद्यार्थियों को अनदेखा करता है ।

इस प्रकार नाटक एक द्रोणाचार्य के जीवन की विडम्बनाओं विद्रूपताओं को उद्घाटित करता है ,दूसरी और आदर्श और यथार्थ से जूझते अरविन्द की मनस्थितियों का चित्रण किया है । अरविन्द आदर्शवादी बना रहना चाहता है । वह अपने छात्र चंदु और अनुराधा की मदद करना चाहता है । अनुराधा से बलात्कार करने

वाले प्रेसीडेंट के लड़के को कोर्ट ले जाना चाहता है, किन्तु उसकी पद लोलुपता और प्रेसीडेंट द्वारा गबन की धमकी की विवशता उसे ऐसा करने से रोकती है । और अरविन्द अन्दर ही अन्दर घुटता षड़यन्त्र का मोहरा बना, नपुंसक बुद्धिजीवी रह जाता है ।

प्रस्तुत नाटक में अरविन्द आदर्श चेतना से प्रभावित है, लेकिन विमलेन्दु अपना उदाहरण देकर उसे कमजोर बनाता है । लीला और यदु "व्यवहारिक चेतना" से युक्त पात्र हैं । अध्यक्ष "भौतिक चेतना" से प्रभावित है । इस प्रकार इन नाटक में आज के समाज में फैली मूल्यहीनता, दिशाहीनता, भ्रष्टाचार, स्वार्थ लिप्सा, पदलोलुपता के साथ साथ , शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त राजनीति, आपाधापी तथा उठ रही नित नई समस्याओं का चित्रण यथार्थ रूप से करता है ।

-::::::-

"खुजराहो का शिल्पी [1972]
- शंकर शेष

"खुजराहो का शिल्पी" नाटक में मानवीय जीवन की विभिन्न अनुभूतियों, वास्तविकताओं, आकांक्षाओं तथा जीवन में व्याप्त "मोह के क्षणों का चित्रण किया गया है । इस नाटक में आदर्शोन्मुखी, व्यवहारिकता का चित्रण किया गया है । शिल्पी क्षणिक आकर्षण में बंधकर अपने आचार्य की पत्नी के साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर लेता है । तत्पश्चात् मोह भंग होने पर अपराध बोध से ग्रस्त हुआ मोह के क्षण को पहचान कर उससे उबर जाता है और "तटस्थता" की स्थिति को प्राप्त कर लेता है । जहाँ पर नारी स्पर्श व सर्प-दंश किस का सुख या भय अनुभव नहीं होता । मूर्ति के लिए प्रतिदर्श बनी राजकुमारी अलका शिल्पी से प्रेम करने लगती है । वह अनेक प्रकार की शारीरिक "कामोत्तेजक अवस्थाओं में प्रतिदर्श बनती है किन्तु शिल्पी पर कोई असर नहीं होता । यहाँ पर शिल्पी की आदर्श चेतना की प्रतिष्ठा की गई है । जबकि अलका आदर्शयुक्त भौतिक चेतना से प्रभावित है । वह शिल्पी को अपने मोहपाश में बाँध ने के लिए तर्क विर्तक भी करती है - "------ मैं तुमसे साफ सफ पूछती हूं, शिल्पी ,कि प्रेम भी क्या"मोह का क्षण" है --- या "क्षण का मोह" है ? -- बोलो ,चुप क्यों हो ?" क्या मैं तुम्हारे प्रति केवल मोह के क्षण के कारण आकर्षित हुई थी ?--- क्या मेरे आकर्षण में केवल कामासक्ति थी ?"[1] वह शिल्पी से अनुनय करती है "शिल्प कार तो अपने मन-मन्दिर का स्थान मुझे दे सकता है ।"[2] किन्तु शिल्पी संसारिक सुखों से ऊपर उठकर आध्यात्मिकता

---

1. खुजराहो का शिल्पी - डा० शंकर शेष - पृ०- 107
2. वही - वही - पृ०-18

की ओर उन्मुख हो चुका है । इस नाटक में शिल्पी के माध्यम से संयम , पवित्रता आदि के मूल्यों की स्थापना की गई है । जहां एक ओर राग, द्वेष, ईर्ष्या, असंयम आदि को जीतने की चेतना दृष्टिगोचर होती है,वहीं दूसरीओर मनुष्य की यथार्थ मनोवृत्तियों का भी चित्रण किया गया है कि वह कैसे मोहग्रस्त होकर अनैतिक कार्य कर बैठता है ।

अत: शिल्पी 'आदर्श-चेतना' से युक्त है । वह अलका के प्रेम के समक्ष अपने दायित्व, कर्तव्य आदि को महत्त्व देता है । अलका 'व्यवहारिक-चेतना' से प्रभावित है ।

-::-

1- खजुराहो का शिल्पी - शंकर शेष - पृ0 107

2 -वही- - पृ0 68

-:: 169 ::-

"देवयानी का कहना है" ॥1972॥
– रमेश बक्षी

समकालीन हिन्दी नाटककारों में रमेश बक्षी एक सुपरिचित हस्ताक्षर हैं । ये न केवल सफल नाटककार हैं अपितु सिद्धहस्त कहानीकार व उपन्यासकार भी हैं । इनकी रचनाएं जड़, परम्परओं के प्रति विद्रोह तथा नवीन स्वस्थ मूल्यों की स्थापना करती हैं । इसलिए इनके पात्र चाहे वह कहानी के हों, या उपन्यास अथवा नाटक के, समाज के प्रत्येक पहलू से ,समाज के प्रत्येक व्यक्ति से तर्क-वितर्क करते नजर आते हैं । इनके नाटकों में बाहरी संघर्ष, आक्रोश है तो आन्तरिक द्वंद्व और मुक्ति के लिए आकुलता भी दृष्टिगोचर होती है । बक्षी जी के नाटक स्त्री-पुरूषों के संबंधों की चीड़-फाड़ करके उन पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं ।

"रमेश बक्षी" कृत नाटक "देवयानी का कहना है" स्त्री-पुरूष के संबंधों को नये दृष्टिकोण, नये चिन्तन तथा नीवन प्रयोगों के आधार पर परखता है । परम्परागत वैवाहिक जीवन पर प्रश्नचिन्ह लगाता है । नाटक में एक ऐसी जिन्दगी को प्रस्तुत किया है जहाँ केवल स्वतंत्रता हो, कोई बन्धन न हो "मुझे एक आसमान ले दो खूब नीला, साफ बहुत बड़ा ।मैं दीन-दुनियाँ से बेखबर उसमें उड़ना चाहती हूं ।"[1] देवयानी और साधन एक घटना की तरह मिलते हैं और बिना किस लगाव-अलगाव से अलग भी हो जाते हैं । सम्पूर्ण नाटक में घटनाओं की गहराई ,चरित्रों का संघर्ष नहीं है केवल तीखे, बोलचाल वाले शब्दों का खेल है ।

नाटक का नायक साधन सामाजिक मूल्यों को मानने वाला, गम्भीर, चिन्तन शील ,आदर्शवादी युवक है । उसे जीवन में स्थिरता

---

1. देवयानी का कहना है – रमेश बक्षी – पृ० -20

चाहिये, दिशा चाहिये । लेकिन देवयानी को स्वंय मालूम नहीं कि सही दिशा कौन सी है ? और उसे किसकी तलाश है । वह तो केवल एक पुरूष से दूसरे, दूसरे से तीसरे के साथ खिलवाड़ करती रहती है । उसके विद्रोह का , भटकन का कोई औचित्य दृष्टिगोचर नहीं होता । वस्तुत यह नाटक आर्ष-वाक्यों, निर्जीव सम्बन्धों, परम्परागत सामाजिक विश्वासों और उपदेशात्मक लम्बी-लम्बी बातों के विरूद्ध विद्रोह की चेतना का नाटक है ।[1] प्रस्तुत नाटक में व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना प्रबल है । देवयानी अहंवादी, स्वच्छंदता प्रिय, नारी है , मुंह फट युवती है । साधन के खाना थूक देते पर मारपीट पर उतारू हो जाती है । साधन को पति रूप में स्वीकार नहीं करती इसलिए कमरे में पर्दा लगाकर पार्टिशन कर लेती है । और एक दोस्त के रूप में रहना चाहती है । इसप्रकार देवयानी भौतिकवादी चेतना से प्रभावित है । पाश्चात्य सभ्यता में प्रभावित वह स्वच्छंदता को महत्व देती है । इसलिए मातृत्व, शारीरिक पवित्रता, पारिवारिक मूल्य उसे ढोसले और अंधविश्वास लगते हैं । भारतीय नारी का पत्नी रूप, मातृत्व उसे भयानक और हास्यापद प्रतीत होते हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता के समक्ष उसे माता-पिता के प्रति प्रेम भी फीका है । जबकि साधन व्यवहार-वादी चेतना से प्रभावित है । यद्यपि वह भी देवयानी से पहले कई युवतियों के सम्पर्क में आ चुका है फिर भी वह सामाजिक मूल्यों, पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति गम्भीर है । वह अंततक परिवार को टूटने से बचाने के लिए समझौता करता रहता है । पाटेडिया, शकुन्तलना, सुरेश, इरा अपने दायरे में सीमित पात्र हैं । पत्रकार रेखा अवश्य जागरूक नारी है । वह विमेन्सलिव" अर्थात् नारी स्वतंत्रता

~~1- देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी - पृ0 20~~

1- समकालीन हिन्दी नाटककार - गिरीश रस्तोगी - पृ0 133

की समर्थक है । "तिवारिन" परम्परागत मूल्यों का अंधानुकरण करने वाली नारी है । डैडी, मानसिक रूप से पंगु , दूसरों द्वारा चलाया जाने वाला निरीह पात्र है ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में नारी स्वतंत्रता के नारे के साथ साथ पाश्चात्य से प्रभावित स्वच्छंदता वाद के परिपेक्ष्य में धूमिल होते पारिवारिक सम्बन्धों, सामाजिक मूल्यों को चित्रित किया है । तथा स्त्री-पुरूष के संबंधों को नये - चिन्तन, धाराणाओं तथा विस्तृत आयामों से सम्पृक्त किया गया है ।

---::-

"एक और अजनबी" (मृदुला गर्ग)
-(1972)

मृदुला गर्ग का "एक और अजनबी" नाटक जीवन की संवेदनाओं तथा समस्याओं को आधुनिकता के परिपेक्ष्य में अभिव्यक्त करता है । आधुनिक युग में भौतिक चेतना से प्रभावित प्रमोशन, सुख-साधन का लोभी व्यक्ति किसप्रकार नैतिक, सामाजिक मूल्यों को नकार रहा है, इसका चित्रण भी प्रस्तुत नाटक में अत्यंत सूक्ष्मता एवं यथार्थता से किया गया है ।

नाटक का प्रारम्भ विवाह की तैयारियां, तथा मंगलगीत गाती स्त्रियों की चुहल-बाजी से होता है । स्वतंत्र अस्तित्व व नारी स्वतंत्रता की भावना से युक्त शानी अपने प्रेमी इन्दर का अमेरिका से लौटने तक इन्तजार नहीं करती और जगमोहन से शादी कर लेती है । विवाह पश्चात् उसे पता चलता है कि इन्दर अमेरिका से लौट आया है और उसके पति जगमोहन का बॉस है । जब जगमोहन को पता लगता है कि उसका बॉस उसकीपत्नी का प्रेमी रह चुका है तो अपने प्रमोशन के लिए वह शानी को मोहरा बनाता है । वह चाहता है कि उसकीपत्नी इन्दर को प्रसन्न कर दे (1) ताकि उसे तरक्की मिल जाये । जगमोहन के इस पद लोलुपता लिजलिजेपन, अन्दर से असशक्त, चापलूस व्यक्तित्व को देखकर शानी क्षोभ और घृणा से भर जाती है । उसे अपना पति अजनबी लगने लगता है, जहां प्रेम व आत्मा के मिलन के स्थान पर स्वार्थ और शारीरिक धरातल का मिलन ही उसे प्राप्त होता है । इन्दर के प्रति झुकाव और पति की

इच्छा को ध्यान कर वह इन्दर को "डिनर" पर बुलाती है। जगमोहन उन्हें अकेला छोड़ काम का बहाना करके चला जाता है। रात का एकान्त पाकर इन्दर शानी को पुरानी बातें याद दिला उससे शरीर प्राप्त करना चाहता है। शानी इन्दर की वासनात्मक दृष्टि को पहचान, उसके घर से बाहर निकलने का कठोर आदेश दे देती है। इन्दर के प्रति उसके मन में जो कोमल भाव थे, जो इस घटना से नष्ट हो जाते हैं। इन्दर उसके लिए दूसरा अजनबी बन जाता है। एक और अजनबी। इस प्रकार इस छोटे से कथानक के माध्यम से लेखिका ने संवेदनशील नारी के अन्तर्द्वंद्व को उभारा है। आधे-अधूरे" की सावित्री की तरह अपने पति में पूर्ण पुरूष को तलाशने वाली शानी को भी निराशा, घृणा और घुटन हाथ लगती है।"[1]

प्रस्तुत नाटक में शानी जागरूक, चेतनायुक्त नारी के रूप में चित्रित है। वह परम्परागत अंधविश्वासों, सामाजिक, नैतिक मान्यताओं को नकारती है। अपने अस्तित्व बोध के लिये अपने प्रेमी इन्दर को ठुकरा देती है "इन्दर ने मुझे कभी प्यार नहीं किया।"[2] इसके विपरीत जगमोहन भौतिक चेतना से प्रभावित सुख-साधनों, तरक्की में लिप्त रहने वाला, विचारहीन पात्र है। इस प्रकार पति-पत्नी दोनों के व्यक्तित्व अलग अलग हैं जो परस्पर टकराते हैं। नाटक में बूढ़ी द्वारा गीत गाना और बीच बीच में रजाई भरवाने का आग्रह

1- एक और अजनबी - मृदुला गर्ग - पृ0 नटरंग -11- पृ०८.

2- - वही - - पृ0 ५ ४

करना, आधुनिक युग की संवेदना को व्यक्त करती है । "मणि" पात्र के माध्यम से समकालीन परिवेश में बदलते सामाजिक मूल्यों और स्त्री-पुरूषों के संबंधों में नई व्याख्या को उद्‌घाटित किया है । मणि व्यवहारिक चेतना से युक्त है । इसके साथ साथ लेखिका ने अविवाहित स्त्री-पुरूष के जोड़े को भी चित्रित किया है , जो बिना वैवाहिक बंधन के निडरता, उन्मुक्तता के साथ-साथ रहता है । किन्तु अंत में डाक्टर स्त्री का लेखक पुरूष को छोड़कर चले जाना आधुनिकता को आत्मसातकर पाना और परम्परा से जुड़े न रहने को अभिव्यक्त करता है ।

इस प्रकार मृदुला गर्ग ने प्रस्तुत नाटक में रोज़मर्रा की घटनाओं , आम बोलचाल की शब्दावली के माध्यम से आधुनिक जीवन की जटिलताओं को चित्रित किया है ।

-::::-

" त्रिशंकु " (1973)
- ब्रजमोहन शाह

तीव्रता के साथ उभरते नाटककार ब्रजमोहन शाह हिन्दी रंगमंच के प्रयोगधर्मी नाटककार के रूप में स्थापित हो रहे हैं । इन्होंने अपने नाटकों द्वारा रंगमंच को नई टैक्नीक, नया प्रयोग दिया है । त्रिशंकु, शह ये मात, युद्धमन आदि नाटकों में कथ्य के रूप में जहाँ आधुनिक जीवन की असंगतियों, सिंगतियों तथा विद्रूपताओं को उभारा है, वहीं नाट्य शिल्पगत नवीन प्रयोग भी किया है ।

लोक नाटक परम्परागत नाट्य शैली और आधुनिक नाटकीय टैक्नीक के समन्वय का सुन्दर प्रयोग ब्रजमोहन शाह कृत "त्रिशंकु" नाटक में किया गया है । (इस नाटक का शीर्षक मिथक है । बाकी सब कुछ आधुनिक परिवेश से जुड़ा हुआ है ।) "त्रिशंकु " पौराणिक प्रतीक के माध्यम से मसकालीन युग की संगतियों-विसंगतियों और राजनीति पर करारा प्रहार किया है । उच्चवर्गीय नेता, अफसर, सेठ, मध्यम वर्ग के युवती, सिपाही, बाबू, ज्योतिषी, निम्नवर्ग के चपरासी, मजदूर आदि सभी वर्ग के पात्र इस नाटक में अपनी मन:स्थिति तथा वस्तुस्थिति को उद्घाटित करते हैं जिसके कारण यह नाटक में सम्पूर्ण समाज का चित्र प्रस्तुत हो जाता है । वर्गहीन प्राणी बुद्धिजीवी, युवक, थियेटरवाला आदि भी आधुनिक जीवन की समस्याओं को सम्प्रेषित करते हैं । इस नाटक में युवक मुख्य पात्र के रूप में चित्रित है । जिसके माध्यम से बेरोजगार युवावर्ग की त्रासदी को यथार्थ रूप से प्रस्तुत

किया है । बेरोजगारीआज की मुख्य समस्या है । उच्च शिक्षा प्राप्ति के बाद भी युवावर्ग बेरोजगार ,दिशाहीन हुआ भटक रहा है । इस भटकन का उसके पास कोई समुचित समाधान भी नहीं मिल रहा है । आधुनिक परिस्थितियों से त्रस्त वह क्रान्ति भी लाना चाहता है किन्तु उसका भी उसे मार्ग ज्ञात नहीं है क्योंकि वह दुर्बल,ठुकराया हुआ, अनुभवहीन और अपने में उलझा हुआ "त्रिशंकु" है ।

प्रस्तुत नाटक में रंगला-रंगली सूत्रधार बनकर नाटक का प्रारम्भ अपने नृत्य और भाषणों से करते हैं । नाटक के प्रारम्भ होने पर जनता में कोलाहल होता है । वह कुछ नया देखना चाहती है । पुराना नहीं चाहती । नाटककार जनता में से ही पात्र चुनता है । सबसे पहले नेता नाटक का मुख्य पात्र बनना चहाता है । वह कहता है क्योंकि वह कहता है -"मैं जनता का दास, दासानुदास, जनसेवक, समाज सुधारक ------- ।"[1] इसके बाद अफसर नाटककार से कहता है कि मैं इससे मुख्य हूँ, क्योंकि देश की व्यवस्था में, प्रशासन में मेरा सबसे बड़ा हाथ है । "क्योंकि मैं सदा अपने अपने रिश्तेदारों के, दोस्तों के मिनिस्टरों के आदमियों के लिए बेमतलब जगह बनाता और काबिल-से-काबिल उम्मीदवारों को निराश करता रहा । एक-से-एक बड़े गधे दफ्तरों में भरते चल गये । दफ्तर घूसखोरी और कामचोर के अड्डे बने हुए हैं । "[2] उसके बाद पूंजीपति सेठ आता है । वह कहता है -" जिसने फलां-फलां स्कूल-कालेज खुलवाये हैं, जिसने फलां फलां विधवा आश्रम, अनाथालय, धर्मशालाएं, अस्पताल और ---- वगैरा --- वगैरा --- खुलवाये हैं ---- । नहीं समझे ? अरे भई, फलां राजनीतिक पार्टी

1- त्रिशंकु - ब्रज मोहन शाह - पृ0 25
2- - वही - पृ0 29

हमारे ही बूते पर तो चुनाव लड़ती-जीतती है ।"[1] इसी प्रकार मध्यम वर्ग के पात्र युवती, सिपाही, ज्योतिषी आते हैं । इसके बाद निम्न वर्ग के पात्र आते हैं । ये सभी बारी बारी से अपनी समस्या बताते हैं । लेकिन नाटककार इनमें से किसी को भी केन्द्र पात्र नहीं बनाता । तभी उसकी दृष्टि डरे हुए, घबराये हुए ऐसे युवक को जो एम•ए• है लेकिन बेरोजगार है । वह उसे मुख्य पात्र बनाकर इसके माध्यम से भ्रष्ट नौकरशाही, अफसरी, नेताशाही भाई-भतीजावाद आदि का चित्रण किया है । बुद्धिजीवी वर्ग समकालीन विषम परिस्थितियों से परिचित है , पर कुछ कर नहीं पाता । वह "समथिंग इज़ रांग सम व्हेयर" कहकर रह जाता है ।

इस प्रकार यह नाटक आधुनिक जीवन की विद्रूपताओं, अर्थहीनता, निरुद्देश्यता तथा बेरोज़गार युवा वर्ग की मानसिक कुंठाओं को चित्रित करता है । समाज का शिक्षित डिग्रीधारी युवावर्ग नयापन चाहता है, क्रान्ति लाना चाहता है । उसमें जागृति है । पर वह असफल रह जाता है क्योंकि उच्चवर्ग के प्रतिनिधि नेता, अफसर और सेठ उसके हर प्रयास को असफल बना देते हैं । यही कारण है कि वह अपने को दुर्बल और असमर्थ समझने लगा है । अपनी स्थिति से असन्तुष्ट है किन्तु बदलाव आने में असमर्थ । इसीलिए वह "त्रिशंकु" बना हुआ है ।

अत: स्पष्ट है कि आज की पीढ़ी जागरूक, अपने अस्तित्व के प्रति चिन्तित, संघर्ष के तत्पर और विषम परिस्थितियों से संघर्षरत है । यही उसकी चेतना का परिचायक है जो प्रस्तुत नाटक में अभिव्यक्त होती है ।

---

1. त्रिशंकु - बृजमोहन शाह - पृ० 31

"इतिहास चक्र" (1978)
- दयाप्रकाश सिन्हा

दयाप्रकाश सिन्हा न केवल सफल नाटककार हैं अपितु मंझे हुए अभिनेता और कुशल निर्देशक भी हैं। इन्होंने इतिहास चक्र, सादर आपका, ओह अमेरिका, कथा एक कंस की आदि नाटकों का सृजन कर नाट्य साहित्य को समृद्ध बनाया है।

दयाप्रकाश सिन्हा कृत नाटक "इतिहास चक्र" आधुनिक युग के शासक वर्ग, पूँजीपति वर्ग तथा नौकरशाही वर्ग पर प्रहार करता है। स्वतंत्र भारत का सत्ताधारी व पूँजीपति वर्ग भ्रष्ट होकर नौकरशाही व्यवस्था में इसके किटाणु फैला रहा है और उसमें पिस रहा है निरीह निम्न वर्ग। जो शासक को चुनता तो है पर चुनने के पश्चात् उसके हाथ की कठपुतली बन जाता है। शासक उसे रोटी, रोजी कपड़ा का लोभ दे कर उसके वोट खरीद लेते हैं और बदले में उसे उससे भी बदत्तर हालत में पहुंचा देते हैं। जनता के ये प्रतिनधि जानते नहीं कि जनता क्या है? वह कैसे रहती है? क्या खाती है? और कैसे जीती है? ~~वह कैसे~~ नाटककार ने ऐसे गम्भीर तथ्यों को इस नाटक में उभारा है।

प्रस्तुत नाटक में राजा व कुबेर के माध्यम से शासक वर्ग व पूंजी पति वर्ग को चित्रित किया है। मोहिनी उनको भ्रष्ट करने वाली नारी के रूप में है और नाम रहित "अनामी" साधारण जनता के रूप में है। जो बीमार, बेहाल, बेघर व फटेहाल है। अनामी की यह स्थिति आज की भारतीय जनता की स्थिति का द्योतक है। नाटक के पात्र राजा और कुबेर यथार्थ-चेतना से प्रभावित हैं। बाबू भ्रष्ट नौकरशाही वर्ग का प्रतीक है। जो अनैतिक तरीकों से पैसा कमाकर भौतिक सुख-साधनों को जुटाता है। वह भौतिक चेतना से अभिप्रेरित है। "अनामी" चेतनाशून्य है। वह समस्त स्थिति को मृत्युपर्यन्त आत्मसात् करता है। ~~वह समस्त स्थिति को~~ इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में आधुनिक युग की राजनैतिक व आर्थिक विसंगतियों का चित्रण किया गया है।

" ओह अमेरिका" (1978)

– दया प्रकाश सिन्हा

समकालीन समाज में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है । इसकी चकाचौंध से प्रभावित युवावर्ग अपने मूल्यों, परम्पराओं को नकार रहा है । इस तथ्य को "ओह अमेरिका" नाटक में नाटककार दया प्रकाश सिन्हा ने व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । "इसके साथ ही इस नाटक की एक अन्य विशेषता यह भी स्वीकार की जायेगी कि भारतीयों की विदेशी सभ्यता संस्कृति और भाषा कीनकल की प्रवृत्ति और विदेशी सभ्यता संस्कृति के प्रति उनका व्यामोह किस हद तक खतरनाक साबित हो सकता है । उस सीमा का यह नाटक परिचय कराता है ।"[1]

नाटक में मुस्लिम शासनकाल, अंग्रेजों के शासन काल और स्वतंत्र भारत इन तीन कालखण्डों के माध्यम से तीन पीढ़ियों ,श्यामके पिता, श्यामलाल तथा उसकी सन्तान के चिन्तन के, कार्यकलापों के अन्तर को स्पष्ट किया है । युवावस्था में पाश्चात्य मोह से ग्रसित श्यामलाल अपने को पिता को बूढ़ा ,ढोंगी और 'बैकवर्ड' कहने वाला, वृद्धावस्था में अपनी सन्तान के आचरण को देखकर सिर पकड़ लेता है । उसकी संतान भी उसकी अवहेलना करती है । तब उसे अपनी भारतीय संस्कृति व सभ्यता का महत्व ज्ञात होता है । नाटक में श्यामलाल, माधुरी , समीर, रमेश, जया आदि पात्र 'भौतिक-चेतना' से प्रभावित है । विवेक पात्र विवेक का प्रतीक है । वह 'आदर्श-चेतना' से युक्त है । इसप्रकार यह नाटक हिप्पी सभ्यता से प्रभावित आधुनिकता युवा पीढ़ी की संस्कार हीनता, तथा आन्तरिक विद्रूपताओं को उजागर करता है ।

1- आधुनिक हिन्दी नाटक - एक यात्रा दशक – नर नारायण राय – पृ0-151-152

"लोटन" ॥1974॥
-"बिपिन कुमार अग्रवाल"

कवि रूप में ख्याति प्राप्त विपिन कुमार अग्रवाल "लोटन" और "तीन अपाहिज" नाटकों द्वारा नाट्य साहित्य में भी चर्चित हो चुके हैं। इनके नाटक आम आदमी की व्यथा और उसके जीवन की त्रासदी को सूक्ष्मता व गहराई से व्यक्त करते हैं।

विपिन कुमार अग्रवाल का नाटक "लोटन" भी आम आदमी की व्यथा को वाणी देता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में बढ़ते औद्योगिक चरणों से देश में मशीनीकरण ने मानव जीवन को भी यांत्रिक बना दिया है। आज वह मानवतावादी मूल्यों से कट कर घड़ी की सूईयों और कैलेण्डर की तिथियों से जुड़ गया है। मशीनी सभ्यता से त्रस्त वह दुहरी यातना सह रहा है। जिन मशीनों का आविष्कार उसने अपनी सुविधा के लिए किया था, वही आज व्यक्ति का शोषण कर रही है। आज व्यक्ति डाकगाड़ी के समान दौड़ रहा है। जिस प्रकार गाड़ी का पटरी से उतर जाने पर हाहाकार मच जाता है लोगों में भय का वातावरण उत्पन्न हो जाता है, अनेक व्यक्ति उसकी चपेट में आकर अपनी जिन्दगी गवाँ देते हैं, उसी प्रकार समकालीन व्यक्ति की जीवन रूपी गाड़ी आदर्श तथा मूल्य रूपी पटरी से उतर गई है जिससे उसके मन में भय का वातावरण बन गया है। उसका जीवन दिशाहीन हो गया है।

नाटक के पात्र बड़े बाबू, मालती, लल्लू, आदि व्यवस्था से बँधे हुए हैं। देश की अव्यवस्था से डरे हुए सहमे हुए हैं किन्तु किशोर

चेतन शील प्राणी है । " मैं इन सब को बंध कर देना चाहता हूँ । उसे वापिस पटरी पर लाना चाहता हूँ । -आदि वाक्य उसकी चेतना के द्योतक है । आज की अव्यवस्था किशोरी जैसे बुद्धिजीवी या चेतन शील प्राणी को भी अपनी चपेट में ले रही है । और शेष है लोटन जैसे भूख और थकान से शिथिल हुए मूर्ख निरर्थ आदमी ।जो देश की अव्यवस्था के प्रति आवाज नहीं उठा पाते ।

इस प्रकार नाटककार ने अपने प्रति, देश की अव्यवस्था के प्रति, मूल्यहीनता के प्रति सचेत किया है, जागृत किया है , चेतना प्रदान की है ।

-:::::::-

" तेन्दुआ " ﴾1974﴿
- मुद्राराक्षस

मुद्रा राक्षसों के नाटकों में साधारणत: ऐसी स्थिति का चित्रण होता है जिसमें समाज के सम्पन्न,सत्ताधारी वर्ग द्वारा गरीब वर्ग का सताया जाना।कहीं कहीं पर गरीब व कमजोर वर्ग अपने अस्तित्व के लिए आवाज उठा पाता है ,किन्तु प्राय: यह कांपता, घिघयाता सा रह जाता है और उस शोषण को अपनी नियति स्वरूप स्वीकार कर लेता है । शोषण व दमन का विस्तृत फलक पर चित्रण मुद्राराक्षस ने "तेन्दुआ" नाटक में किया है । सुविधा भोगी ,सम्पन्न वर्ग का यौन चेतना से कुंठित होकर माली को तरह तरह की यातनाएं देना, तथा मनोरंजन के लिए आदमी को जानवर की तरह नचाना आदि ऐसे ही वीभत्स तथ्य हैं जिनका पर्दाफाश प्रस्तुत नाटक में किया गया है । विजय धोधप के शब्दों में -"यहां लड़ाई किसी एक खास संस्थानिक रूप से नहीं, बल्कि पूरे अभिजात्य वर्ग की दमन कारी कुत्सित एवं विकृत प्रवृत्तियों से है ।"[1] डरे, सहमे ,आतंकित बच्चे घास को रोंदने का साहस जुटा ही लेते हैं ।[2] यह गरीब वर्ग का विद्रोह की ओर उन्मुख होना है । जो उनकी चेतना का परिचायक है ।

"तेन्दुआ" नाटक न तो चरित्र प्रधान नाटक है और न ही घटना प्रधान । प्रस्तुत नाटक में अभिजात्य कहलाने वाले वर्ग की कुंठित मनोवृत्ति ,यौन स्वच्छंदता,विकृत काम संबंधों को चित्रित किया है । मिसेज रेनू राय को एक ऐसे जानवर की तलाश है जो मिसज मदाम के

1- नटरंग ﴾पत्रिका﴿ - विजय धोधप - पृ0- 48
अंक पैंतीस

2- तेन्दुआ - मुद्रा राक्षस - पृ0- 92

तेन्दुए से लड़ सके, उसके समान खुंखार दिख सके । तभी उसे बूट के रूप में निरीह बेकसूर माली मिल जाता है, जिसे उसका पति हवालात में बंद करने ले जानो वाला है किन्तु रेनू राय उसे अपने मनोरंजन के लिए ले लेती है और गर्वित होकर मिसिज मदाम के समक्ष उसे तरह तरह से सताकर दर्द के तड़पाती हैं । उन दोनों माली की पीड़ा में सैक्स की उत्तेजना दृष्टिगोचर होती है । वह अपनी कामोत्तजना की अवस्था में माली की रान पर मोम पिघलाती, इलैक्ट्रिक शॉट्स लगाती और अंत में ओलपिक मशाल बनाकर मार डालती हैं । आज भी निम्नवर्ग धनी वर्ग के लिए जानवर के समान है, इस तथ्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है । "तेन्दुआ" शब्द का प्रयोग प्रतीक रूप में किया है जो प्रभुता सम्पन्न वर्ग की यौन संबंधी कुंठा, हिंसक भावना, विकृत मनोवृत्ति को स्पष्ट करता है । यह नाटक स्वातंत्र्योत्तर काल में लिखा गया है जो अमानवीय कृत्यों को "अतिशयोक्ति" व "अति" की सीमा को भी लांघकर तथ्यों को प्रस्तुत करता है । गुलामी की जंजीरों में जकड़े भारत में ऐसी घटनाएं हो सकती थी किन्तु स्वतंत्र भारत में ऐसी घटनाएं देखने सुनने में नहीं आती ।

प्रस्तुत नाटक में भौतिक चेतना का प्रभाव झलकता है । जहां आदर्श, सहानुभूति और प्रेम जैसे भाव टूटरहे हैं ।

-::-

"बकरी" (1974)
- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

कवि के रूप में क्रान्तिकारी विचारों को प्रतिपादित करने के साथ-साथ नाटक क्षेत्र में, भी "बकरी" तथा "लड़ाई" जैसे नाटकों में खलबली मचा देने वाले सर्वेश्वर दयालसक्सेना - अपने नाटकों में राजनैतिक भ्रष्टाचार, सत्ता लिप्सा व स्वार्थान्धता का सजीव चित्रण प्रस्तुत कर देते हैं । समकालीन राजनीति जनता कितनी त्रस्त हो रही है, राजनीतिक हथकण्डों का शिकार बन रही है इसी तथ्य को इनके नाटक बखूबी उभारते हैं ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कृत "बकरी" नाटक समकालीन संकटग्रस्त जिन्दगी का यथार्थ रूप से चित्रण करता है । पारसी रंग शैली तथा भारतीय लोक नाट्य की नौटंकी शैली के सम्मिलित रूप पर आधारित नाटक आम आदमी की त्रासदी का प्रमाणिक दस्तावेज है । परतंत्रता की जंजीरों से निकलकर जनता अपने ही नेताओं द्वारा नई जंजीरों से जकड कर छली जा रही है, सताई जा रही है, समस्त नाटक में इसी तथ्य को प्रतीकात्मक और व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है ।

प्रस्तुत नाटक में चरित्रों, कथानक तथा घटनाओं की असम्बद्धता है । फिर भी कथा को तीन डाकू, एक सिपाही, विवश औरत, युवक आदि पात्रों के माध्यम से आधुनिक जीवन के सारे उतार-चढ़ाव भ्रष्टाचार तथा साधारण जनता की विडम्बना को चित्रित किया है । नाटक का प्रारम्भ नट-नटी के संवादों द्वारा होता है । नट पांच रत्नों को "ढोंग की रेस" से आधुनिक भ्रष्ट राजनीति का संकेत मंगलाचरण में ही कर देता है । मशक से सड़क सींचते भिश्ती को देखकर दुर्जन सिंह, कमवीर तथा सत्यवीर जनता को लूटने की योजनायें बनाते

ये तीनों डाकू देश की व्यवस्थाओं के प्रतीक हैं । उन तीनों में सिपाही भी सम्मिलित हो जाता है । अर्थात् देश का रक्षक भी इन्हीं भक्षकों के साथ मिलकर जनता का शोषण कर रहा है । ये सभी मिलकर गरीब भोली-भाली विपती की बकरी को हड़प लेते हैं और जब विपती अपनी बकरी मांगने आती है तो उसे "सार्वजनिक सम्पत्ति" लूट के आरोप में जेल भिजवाकर अपना मार्ग बाधारहित बना लेते हैं ।और जनता के अंध-विश्वासों का लाभ उठाकर बकरी को जनता द्वारा पुजवाते हैं तथा जनता कल्याण के नाम पर "बकरी शांति प्रतिष्ठान" "बकरी संस्थान" "बकरी सेवा संघ" आदि संस्थानों की स्थापित कर भोली-भाली अंध-विश्वासी जनता को लूटते हैं । इन संस्थाओं के नाम से नाटककार ने हमारे देश में फैली "गांधी शान्ति प्रतिष्ठान" "हरिजन सेवा संघ" "गांधी संस्थान" तथा अन्य अनेक संस्थानों में व्याप्त व्यभिचार को उद्घाटित किया है । दुर्जन सिंह कमवीर को चुनाव में खड़ा कर "मंत्री" बनवा देते हैं । जनचेतना के प्रतीक युवक को षड्यन्त्र में जेल भिजवा देते हैं । डाकूओं का आगे चलकर नेता बन जाना आज के लुटेरे ,स्वार्थी नेताओं के चरित्र को उजागर करता है, जो जनता के प्रतिनिधि बनने का दावा करके उसी को लूटते हैं । किन्तु नाटक का अंत आदर्शवादी है । चुनाव जीतने की खुशी में भोज का आयोजन करते हैं तभी युवक, विपती तथा सभी ग्रामीण इन लुटेरों को बांध लेते हैं । यहां पर नाटककार का युवा शक्ति व आम जनता की जागृति से देश के उत्थान पर विश्वास है ।

इस नाटक में "विपती" आम जनता का प्रतीक है जो लाचार, विवश तथा ग्रामीण अंधविश्वासों से भरी है । और युवक जन-चेतना

युक्त युवा पीढ़ी का प्रतीक है । युवक का आक्रोश नेताओं का व्याभिचार देखकर फूट पड़ता है --"--- यही कि वोट, चुनाव सब मजाक हो गया है । सब झूठ पर चल रहा है । गरीबों की बकरी पकड़ कर उनसे पहले पैसा दुहा । अब वोट दुह रहे हैं । फिर पद और कुर्सी दुहेंगे ।"[1] इस प्रकार प्रस्तुत नाटक सत्ता के शोषण और आम आदमी की विडम्बना पूर्ण स्थिति पर करारा व्यंग्य करता है । होला, जो गांव के लोगों की समस्यायें लेकर अहनाथ के पास आता है किन्तु वह धन के लालच में उसका ही होकर रह जाता है और जब मांगों के समर्थन में मजदूर व बेरोजगार प्रदर्शन करते हैं तो पुलिस अश्रुगैस, लाठी प्रहार करती है । इसप्रकार पुलिस की कर्तव्य को भूलकर पूंजीपति वर्ग का साथ दे रही है ।

आज समाजमें सर्वत्र आपाधापी मची हुई है । बड़ा छोटे को निगलने के लिए आतुर है । वोट पाने के लिए नेता बड़े बड़े वायदे करते हैं किन्तु चुनाव जीतने के बाद ये वायदे हवा में उड़ जाते हैं । संघर्ष की चक्की में पिस रही निरही जनता विवश रह जाती है । भिखारी -"(अखबार वाले से) "क्यों भाई इन कागज़ों में क्या है ?

अबखबार वाला- इनमें वायदे हैं ।

भिखारी - तो ये वायदे हवा से उड़ जाते हैं क्या ?

अखबार वाला- हां, ऐसा ही होता है । ये हवा में उड़ जाती है ।"[2]

इसप्रकार प्रस्तुत नाटक में आज के राजनैतिक तथा आर्थिक वातावरण का यथार्थ चित्रण किया है । इसके साथ साथ समाज में बढ़ती बेरोज़गारी की समस्या को भी चित्रित किया है । युवा पीढ़ी देश की दयनीय अवस्था व भ्रष्टाचार से आक्रोशित है । किन्तु समर्थन तथा धन न मिलने पर कमजोर व असमर्थ है । नाटक में भ्रष्टाचार पर तीखा व्यंग्य किया है ।

-::-

1- बकरी - सर्वेश्वर दयाल - पृ0-47

2- विरोध - अभिमन्यु अनन्त शबनल - पृ0 47

"व्यक्तिगत" §1975§

– डा० लक्ष्मी नारायण लाल

"व्यक्तिगत" नाटक डा० लाल के प्रतिनिधि नाटकों में से एक है । इस नाटक में व्यक्ति जीवन के वैयक्तिक व सामाजिक स्तर के संघर्ष को प्रस्तुत किया है । इसमें भौतिकता की अंधी दौड़ में नैतिकता की अवहेलना की गई है । नाटक के दो पात्र "मैं" और "वह" मंच की अर्थवत्ता को सार्थक करते हुए मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को उभारते हैं । सामान्यत: यह नाटक यह पति-पत्नी के बीच बढ़ती दूरियों को आधुनिक भौतिक सभ्यता के आधार पर चित्रित करता है । यह कहा जा सकता है कि "व्यक्तिगत" नाटक व्यक्तिगत जीवन को ले कर चलता है ।

प्रस्तुत नाटक में "मैं" और "वह" के माध्यम से मूल्यों में द्वंद्वात्मक स्थिति को दर्शाया है । इसके पात्र आत्मरत व स्वार्थी हैं । दोनों एक दूसरे पर हावी होना चाहते हैं । उन दोनों के बीच पति-पत्नी का आपसी प्रेम, मधुर वातावरण समाप्त हो गया है और तनाव, कुंठा व परस्पर कलह का माहौल बना हुआ है जो भौतिक सभ्यता की देन है । डा० सरजू प्रसाद मिश्र के शब्दों में –"इस सभ्यता की कृपा से हम सामाजिक न होकर "व्यक्ति" बन गये हैं, मानव न होकर "नदी के द्वीप " बन गये हैं ।"[1] इस बदलते हुए परिवेश में पति के आदर्श व मूल्य बदल रहे हैं, तो पत्नी भी केवल आदर्श नारी नहीं रह गई है । शिक्षा व विज्ञान ने उसके अस्तित्व व व्यक्तित्व को नई दृष्टि से उभारा है । इसलिए पति-पत्नी के बीच मानसिक दरारे पड़ गई हैं।

1- नाटक कार लक्ष्मी नारायण लाल- डा० सरजू प्रसाद मिश्र पृ०-148

आज पति-पत्नी के बीच व्यक्तिगत नाम की कोई चीज़ नहीं रह गई है । वे केवल व्यक्तिमात्र बनकर रह गये हैं । इसी कारण वे संज्ञा से सर्वनाम ("मैं और "वह") मात्र रह गये हैं पति "मैं" के रूप में अपने अंह भाव को तुष्ट करना चाहता है । उसके लिए पत्नी "वह" मात्र रह गई है । "मैं" अपनी अभिलाषा की तृष्टि हेतु आफिस से फाइल चुनाने ,रिश्वत लेने और पत्नी को संगीत सुनाने के बहाने टैक्स कमिश्नर के पास भेजने में भी संकोच नहीं करता है । अपनी स्वच्छंद यौनवृत्ति के कारण पत्नी को रिसेशप्निस्ट, पार्टनर, सैक्रेटरी आदि के रूप में देखता है । "मैं" के लिए "वह" के साथ सम्बन्ध खेलमात्र है । यही कारण है कि "वह" और "मैं" अलग अलग अनुभूति और संवेदना से जुड़े हैं ।

"व्यक्तिगत" नाटक में नाटककार ने एक चरित्र "मैं" को अनेक पतियों के चरित्र को उदघाटित करने के लिए अनेक स्तरों पर चित्रित किया है । आज का बौद्धिक व्यक्ति असन्तुष्ट हुआ समस्त इच्छाओं को एक साथ तृप्त कर लेना चाहता है । वह मशीन बना दौड़ता रहता है । नाटककार ने "मैं" पात्र के माध्यम से ऐसे ही व्यक्ति का चित्रण किया जो स्वार्थ के वशीभूत केवल लेना ही जानता है । डा0 दयाशंकर शुक्ल के शब्दों में -" वस्तुत: "मैं" के माध्यम से नाटककार स्वातंत्र्योत्तर भारतवर्ष के जीवन नाटक का चित्र प्रस्तुत करना चाहता है । इस नाटक में "मैं" का चरित्र आजादी के बाद की उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है जो देना नहीं, लेना जानती है, हड़पना चाहती है । वह रचना नहीं करती केवल उपभोग करती है ।"[1]

1- लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक और रंगमंच - डा0दयाशंकर शुक्ल-पृ0-146

"वह" "मैं" के प्रति विद्रोह करते हुए भी समझौता चाहती है । "वह" "मैं" को अहंकार के अंधकार से निकालकर प्रकाश में लाना चाहती है । इसी स्थिति के कारण वह मानसिक द्वंद्व से घिरी रहती है । "मैं ऐसी क्यों होती जा रही हूं ? कहां गई मेरी सारी अस्मिता ? वह संगीत कहां है ? कैसी-कैसी इच्छाएं भी तो हैं, मैं शान्ति भी चाहती हूं और विद्रोह भी ।"[1] इस प्रकार "वह" की मन:स्थिति आधुनिक बौद्धिक नारी की मनस्थिति को अभिव्यक्त करती है । नारी आज स्वअस्तित्व के लिए विद्रोह भी करती है, किन्तु पुराने संस्कारों व असुरक्षा से भयभीत होकर परिस्थितियों से समझौता भी कर रही है । इस प्रकार "वह" चेतनाशील होते हुए भी समझौतावादी है ।

अंत में कहा जा सकता है कि इस नाटक में "मैं" और "वह" के माध्यम से आधुनिक सभ्यता के कारण टूटते पति-पत्नी के संबंधों व जीवन की यांत्रिकता को उद्घाटित किया है । नारी स्वतंत्रता का नारा आज भी एक दिखावा है, उपहास है । टुकड़े-टुकड़े जीवन जीता व्यक्ति नारी को स्वतंत्र नहीं कर सकता । समकालीन व्यक्ति यांत्रिक जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं व अंधी दौड़ में अपना अस्तित्व खोता जा रहा है ।

इस नाटक का पात्र "मैं" भौतिक चेतना और यथार्थ चेतना से प्रभावित है जबकि "वह" परम्परागत संस्कारों से जुड़ी होने पर भी व्यवहारवादी चेतना से प्रभावित है ।

-:::::-

"सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" (1975)
- सुरेन्द्र वर्मा

मानव की कोमल कमनीय भावनाओं के सफल चितेरे के रूप में ख्याति प्राप्ति नाटककार सुरेन्द्र वर्मा "वर्जनाओं से मुक्ति" के नाटककार हैं । इनकी लेखनी शयन कक्ष की गुप्त क्रियाओं, युवा लड़के लड़कियों की गोपनीय बातों तथा स्त्री-पुरूषों के "आवरणों में ढके कार्य क्लापों" को निसंकोच खुले प्रांगण में प्रस्तुत कर रही है । फ्रायडवादी सिद्धान्त के आधार पर "काम भावना" को सहज व प्राकृतिक मान कर वर्मा जी का नाटककार निर्बाध गति से काम चेष्टाओं व काम भावनाओं को अभिव्यक्त कर रहा है । यौन वृत्ति के आधार पर किस प्रकार परिवार बन और बिगड़ रहे हैं - इस तथ्य को इनके नाटकों ने यथातथ्य प्रस्तुत किया है । "द्रौपदी" सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, "आठवां सर्ग", आदि नाटक, और कई एकांकियों के द्वारा सुरेन्द्र वर्मा हिन्दी नाटक क्षेत्र में बहु चर्चित हो चुके हैं ।

आधुनिक युग का रंगमंच प्राचीन काल से चली जा रही वर्जनाओं को उद्घाटित कर रहा है । इन वर्जनाओं में पति-पत्नी के नितान्त निजी तथ्य भी सम्मिलित हैं ,जिन्हें आज का नाटककार प्राकृतिक व स्वाभाविक कह कर वर्णित कर रहा है । स्त्री-पुरूष के काम संबंधों को आधार बनाकर नाटक लिखने वालों में प्रमुख नाटककार सुरेन्द्र वर्मा कृत "सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" नाटक में फ्रायड वादी यौनवृत्ति को केन्द्र बिन्दु बनाकर रचा गया है । यह नाटक पति-पत्नी के अत्यन्त सूक्ष्म एवं अन्तरंग काम संबंधों का चित्रण तो करता ही है साथ ही आदिकाल से अनैतिक व वर्जित माने हुए तथ्य को भी साहस व सूक्ष्मता से प्रकट करता है । जागरूक और समर्थ नारी तथा पुरूष अहं की टकराहट ने आज के नैतिक व

सामाजिक मूल्यों को झकझोर दिया है । नारी की सार्थकता के प्रतिमान सन्तान प्राप्ति व पति सेवा आज "गौण उत्पादन" मात्र रह गये हैं । शारीरिक सुख में ही एकमात्र नारी-पुरुष की सार्थकता है । पौराणिक तथ्य 'नियोग प्रथा' को कथा वस्तु बनाकर नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । पति की नपुंसकता तथा पत्नी का "उत्तेजना की सीमा से रीते हाथों वापिस लौट आना" ऋतुओं का बिना प्रभाव के गुजरते जाना, परन्तु अकस्मात् विस्फोटक स्थिति पैदा होने पर मर्यादा, सन्तान प्राप्ति, सन्तोष, शारीरिक पवित्रता जैसे मूल्यों को नकारना आदि तथ्य के आधार पर शाश्वत् यौन संबंधों व स्थितियों का चित्रण इस नाटक में किया गया है ।

प्रस्तुत नाटक में जातक कथा के पात्रों और पौराणिक प्रसंग को आधुनिक जीवन सत्य से जोड़ा है । राजा ओक्काक और रानी शीलवती लगभग शान्त जीवन जी रहे थे । किन्तु राज्य को उत्तराधिकारी की चाह थी, जो इच्छा ओक्काक नपुंसक होने के कारण पूरी नहीं कर सकता था । अमात्य परिषद द्वारा सूर्य अस्पर्शा शीलवती को एक रात के लिए धर्मनटी बनकर उपपति का चुनाव करने के लिए विवश किया जाता है । सूर्य की अन्तिम किरण में अर्थात् विश्वास, सामाजिक मूल्यों के समय में चुनाव से पूर्व वह अपने को वेश्या समझती है । उपपति के चुनाव को वह अपने बालसखा प्रतोष को चुनती है । मध्य रात्रि में मूल्यों व विश्वास के जाल को तोड़ने का प्रयत्न करती है । किन्तु सूर्य की पहली किरण में वह धर्म, पवित्रता, मर्यादा को नये दृष्टिकोण से पहचान कर उन्हें पुस्तकीय घोषित कर देती है । ओक्काक पुरूषोचित दंभ से त्रस्त है । तो शीलवती शारीरिक इच्छा, सुख व कामना से विवश । "कितनी

युवतियां हैं जो ब्याह से पहले ही कुमारी नहीं रहतीं--- और मैं ब्याहता होकर भी ब्रह्मचारिणी थी ---- लेकिन कब तक ? --- मैं एक मामूली स्त्री हूं ।जब शरीर के माध्यम से जीती हूं, तो शरीर की मांगों को कैसे नकार सकती हूं ?[1] इस प्रकार शीलवती वैवाहिक मर्यादा व मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए फिर धर्मनटी बनने की घोषणा करती है ।

प्रस्तुत नाटक में नाट्ककार ने स्त्री-पुरूषों के शाश्वत्, काम सम्बन्धों, वैवाहिक मर्यादा, मूल्यों तथा वर्जनाओं को नई मनस्थितियों एवं नई दृष्टिकोणों से परखा है । "सही शब्दों में निश्चय ही यह हिन्दी में अकेला नाटक है जो वर्जनाओं ,पुराने मूल्यों, सामाजिक निषेधों निषेधों ,और पति-पत्नी के रिश्ते को लेकर बनी हुई अत्यंत नैतिक पवित्र तस्वीर को तोड़ता है - बिना किसी कुंठा के या अपराध बोध के ।"[2]

नाटक भौतिक चेतना से प्रभावित है । शीलवती पांच वर्षों तक वैवाहिक संबंधों को ईमानदारी से निभाती है किन्तु अन्त में सामाजिक मर्यादा ,परम्परा को दैहिक सुख के आकर्षण में नकारती है । इसप्रकार धर्म से सम्पृक्त "काम" को आधुनिक भाव बोध की भूमि से जोड़ा गया है । आज के भौतिकवादी अंधी दौड़ में पुरूष अर्थ प्राप्ति के लिए दिन-रात दौड़ रहा है । धन प्राप्ति के समक्ष वह पत्नी व सन्तान को गौण मान रहा है । दूसरे शब्दों में वह नपुंसक न होते हुए भी नपुंसक है । संज्ञाहीन है ।इसलिए पत्नी पर पुरूष की ओर आकर्षित हो पूर्ण पुरूष की तलाश में सावित्री की तरह भटक रही है । इसप्रकार अंत में कहा जा सकता है कि नाटक में स्त्री और पुसंत्व-हीन पुरूष की मानसिक स्थिति व वैचारिक द्वंद्व को तीखेपन से उभारा गया है । और स्वच्छंद यौन चेतना को नई दृष्टि प्रदान की है ।

1- सूर्य की अन्तिम---- किरण तक - सुरेन्द्र वर्मा - पृ0-54

2- समकालीन हिन्दी नाटककार - गिरीश रस्तोगी -पृ0-66-67

"कथा एक कंस की" ¥1976¥
- दया प्रकाश सिन्हा

"कथा एक कंस की" नाटक आपातकालीन पृष्ठभूमि में पौराणिक प्रसंग को समसामयिकता को आधार बिन्दु बनाकर रचा गया है । आपात् कालीन स्थिति में शासन व्यवस्था इतनी कठोर हो गई थी कि जनता की स्वतंत्रतता, प्रजातंत्र तथा उसके मूल्य सोमित होकर रह गये । उसी स्थिति को यह नाटक चित्रित करता है । यह वैयक्तिक चेतना से उभरकर व्यक्तिवादी चेतना की ओर विकसित होता है ।

(इस नाटक में कंस को आधुनिक राजनीति में संलग्न नेता के रूप में माना गया है । नाटककार ने महाभारत कालीन राजनीति के दाँव पेचों का तथा समकालीन राजनीति की समानता को ध्यान में रखते हुए राजनीति की क्रूरताओं, निरंकुशता तथा अत्याचार से व्याप्त शासन व्यवस्था को उजागर किया हैं तथा बंशी के स्वर को जनता के विद्रोह कास्वर माना है । अर्थात् जन-साधारण की चेतना का प्रतीक माना है जिससे कंस रूपी निरंकुश शासक आक्रान्ति होता है ,लड़खड़ाता है और अंत में जनसमूह की क्रान्ति से परास्त होता है ।)

नाटक की कथा का प्रारम्भ कंस के प्रचण्ड अभिमान से विक्षिप्त मानसिक कुण्ठाओं की अभिव्यक्ति के साथ होता है । कंस कोमल हृदय वाला भावुक होता है । बाल्यावस्था में वह संगीत सीखता है । पिता उग्र सेन उसकी संगीत भावना का उपहास उड़ाता है । बाल्य-वस्था की कोमल भावनायें बर्बर,क्रूरता में बदल जाती हैं । इसके अति-रिक्त शिकार खेलते समय पिता उग्रसेन द्वारा उसे जंगल में अकेला छोड़ दिया जाता है । डर कर रोने से उसकी इतनी पिटाई होती है कि

उसके कपड़े गीले हो जाते हैं । परिणामस्वरूप पिता के प्रति कंस का आदर भाव कम हो जाता है और वह पितृ-विरोधी बनकर उसे जेल में बंदी बनाकर स्वंय राजसिंहासन पर आरूढ़ हो जाता है । तत्पश्चात् कंस इतना क्रूर हो जाता है कि बहन के साथ उसका स्नेहभाव ख़त्म हो जाता है । प्रत्येक रिश्ते को वह राजनीति से तोलता है । स्वाति कंस की प्रेमिका है लेकिन कंस उसे अपने सेनापति प्रद्योत से विवाह करने को कहता है तथा पूतना बन कर कृष्ण को मारने का आदेश देता है । पत्नी का राजसी दर्प उसे और भी क्रूर अंहकारी बना देता है । प्रजा कंस की क्रूरता को सहन नहीं कर पाती । युवा पीढ़ी विद्रोह करती है । वृतध्न के शब्दों में -"विद्रोह का रोग युवक युवतियों में सबसे अधिक है । वे भगवान की सत्ता समाप्त करके नव-निर्माण करना चाहते हैं ।"[1] यह तथ्य युवा वर्ग की चेतना का प्रतीक है और अंत में कंस इस वर्ग से पराजित भी होता है । यह प्रतीक है तानाशाही, निरंकुशता की समाप्ति पर प्रजातंत्र का आह्वान ।

इस प्रकार नाटक में राजनीति के परिपेक्ष्य में टूटती 'आदर्श-चेतना' का तथा उसके स्थान पर तीव्रतर होती यथार्थ व भौतिक चेतना का चित्रण किया है । कंस की बाल्यवस्था की कलाप्रियता से नाटककार स्पष्ट करना चाहता है कि व्यक्ति राजनीति में आने से पहले बालक के समान सरल हृदय वाला होता है । उसका हृदय देशप्रेम ,देशसेवा त्याग से युक्त होता है, किन्तु बाद में राजनीति के कुचक्रो में फंसकर वह क्रूर , स्वार्थी, अवसरवादी ,लोभी बन जाता है । और युवा-पीढ़ी इस अव्यवस्था को तोड़ने का साहस करती है । यही साठोत्तर कालीन युवा पीढ़ी की चेतना ही जागृति है ।

1- कथा एक कंस की - दया प्रकाश सिन्हा - पृ0-99

"विरोध" (1977)

– अभिमन्यु अनंत शबनम्

"विरोध" समकालीन समाज की सबसे विकट समस्या "बेरोज़गारी" का मार्मिक व सफल चित्रण करता है । आज का शिक्षित युवा वर्ग हाथों में "डिग्री" का बोझ लिए दर-दर भटक रहे हैं । लेकिन उन्हें पेट भरने तक की नौकरी नहीं मिल पाती । इसीलिए युवा पीढ़ी देश की अव्यवस्था के प्रति आक्रोश से भरी है । साथ ही कुछ न कर पाने के एहसास से कुंठित, तनावग्रस्त तथा टूटी हुई है । इन्हीं विकट तथ्यों व परिस्थितियों का चित्रण प्रस्तुत नाटक में किया गया है ।

नाटक के पात्र केतु, मासा, सिंहल तीन शिक्षित बेरोज़गार युवक हैं । ये तीनों पिछले कई दिनों से भूखे हैं । तीनों केले खरीदते हैं । मासा व सिंहल, केतु के हिस्से का एक मात्र केला भी खा जाते हैं । भूख से विह्ल केतु चिल्लाता है । मनुष्य की प्राकृतिक आवश्यकता भूख को दूर करने के लिए दवाई की खोज करना चाहता है जिससे भूख न लगे और कमर तोड़ देने वाली नौकरी के लिए तिलतिल मरना न होगा। केतु का यह विचार आज की बेरोज़गारी पर करारा व्यंग्य करता है । देश में भ्रष्टाचार इतना व्याप्त है कि नौकरी प्राप्ति के लिए डिग्री की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी सिफ़ारिशी पत्रों तथा रिश्वत के लिए पैसों की है । बेरोजगार युवक इतना अधिक कुंठित हो गया कि वह निरपराध जेल भी जाने को तैयार है । क्योंकि वहाँ दो जून रोटी तो मिल जाता है । एक ओर बेरोज़गारी तो दूसरी ओर मँहगाई जनता की कमर तोड़ रही है । जनता के पास चाहे पेट भरने के लिए पैसे न हो पर सरकारी "कर" देना ज़रूरी

है । भिखारी कहता है -"यहाँ तो बच्चा माँ के पेट से ही "कर" चुकाना शुरू कर देता है ।" धनी वर्ग पैसे के बल पर निम्न वर्ग को खरीद कर अपने स्वार्थ की पूर्ति करता है । "भौतिक चेतना" के कारण टूटते पारिवारिक संबंधों को उद्घाटित कर अत्याधिक धन संग्रह की बुराइयों को प्रकट करना चाहता है । मानिकचंद सेठ व अन्य पात्र भौतिक चेतना से प्रभावित पात्र हैं ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह नाटक पूंजीपति वर्ग के टूटते पारिवारिक रिश्तों, खोखलेपन, अनैतिकता तथा अकेलेपन को अभिव्यक्त करता है । साथ ही वर्गों के बीच चौड़ी हो रही वैमनस्य और संघर्षों की खाई को चित्रित करता है ।

-::::-

"टगर" (1977)

– विष्णु प्रभाकर

साठोत्तर समाज की परिस्थितियों ने व्यक्ति को ~~अहम~~ अत्यधिक जागरूक व अहम् वादी बना दिया है । आज की नारी में अत्याचारों को मूक बनकर भोगती नहीं रहती अपितु, किसी न किसी प्रकार उनका विरोध करती है । प्रस्तुत नाटक "टगर" में भी विष्णु प्रभाकर ने ऐसी ही नारी का चित्रण किया है जो अपने साहित्यकार पति द्वारा त्याग दिये जाने पर पुरूष जाति से बदला लेने पर उतारू हो जाती है । वह अपने रूपजाल में पुरूषों को बहका कर ,उनको बेनकाब करके अपने अहम् को संतुष्ट करती, और आगे बढ़ जाती । किन्तु उसकी यह डगर लक्ष्यहीन है । अंत में स्वंय भी इसे स्वीकार करती है -""""मैं अपने ही बिछाये जाल में फंस गई हूं । यह खेल मात्र एक दम्भ है , एक छल । नहीं, यह खेल में अब और न खेल सकूंगी --------- ।"[1]

टगर, जिसका पूर्व नाम रश्मि प्रभा था, अपने साहित्यिक पति शेखर द्वारा इसलिए छोड़ दी जाती है कि वह उसके साथ सार्त्र, कामू, दर्शन व साहित्य पर बहस नहीं कर पाती थी । पति द्वारा ठुकराये जाने पर वह प्रतिहिंसा पर उतारू हो जाती है । और निश्चय करती है कि -" उसने मुझे एक बार छोड़ा है , मैं बार बार पुरूषों को छोडूंगी ।"[2] इस प्रकार वह अपने रूप जाल में ठाकुर, माथुर व नाजिम को फंसाती है । ठाकुर लोक गीतों के संग्रह के बहाने तस्करी करता है । टगर उससे प्यार का नाटक करती है और अंत में उसके

1- टगर - विष्णु प्रभाकर - पृ0 72

2- टगर - ,, - पृ0 71

व्यवसाय को स्पष्ट करके उसे गिरफ्तार करवा देती है । फिर माथुर उसकी ओर आकर्षित होता है । वह अपनी पत्नी को तलाक देकर अपनी प्रेमिका को कुसुम को धोखा देता है ,जिससे कुसुम आत्महत्या कर लेती है । टगर उससे भी प्यार का नाटक रचती और अंत में उसे भी बेईमानी के इल्जाम में गिरफ्तार करवा देती है । और नाजिम के पास चली जाती है । और जब नाजिम से विवाह की तैयारी हो जाती है तो अपने दम्भ व द्वंद्व अहम् को समझ कर विवाहके लिए मना कर देती है और उसे छोड़ कर अनजानी राह पर चल देती है ।

प्रस्तुत नाटक में "टगर" के माध्यम से नारी चेतना को अभि-व्यक्त किया है । आधुनिक युग की नारी स्व अस्तित्व व स्वाभिमान की भावना से युक्त है । वह पुरूष द्वारा तिरस्कृत होने पर उससे बदला लेने पर उतारू हो जाती है । उसने उस आदर्श महिला के दमघोटू नकाब को उतार फैंका है ,जब वह तिल-तिल मरती और सती, देवी का पद प्राप्त करती । आज वह समाज की चिन्ता न करते हुए अपने स्वतंत्र चिंतन व जीवन में विश्वास रखने लगी है । और इसी आधार पर वह नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों को नकार भी रही है । "खुदखुशी करने की क्या जरूरत थी ? मेरी तरह अपने को बेच देती और दुहरा लाभ उठाती ।"[1] टगर ठाकुर की विवाहिता न होने पर भी उसके साथ पत्नी की तरह रहती है ।

इस प्रकार इस नाटक में टगर यथार्थ चेतना से प्रभावित है । और लगभग सभी पात्र यथार्थ वादी चेतना से प्रभावित हैं । "टगर" के माध्यम से नाटककार ने अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक नारी का चित्रण किया है ।

1- टगर - विष्णु प्रभाकर - पृ0-29

"निशान्त "

- जयनाथ नलिन

जयनाथ नलिन का "निशान्त" सामाजिक समस्या को केन्द्र बना कर लिखा गया है । "धनी वर्ग" भौतिक चेतना ,शराब व रेस में मग्न होकर किस प्रकार परिवार में विघटनकारी तत्व उपस्थित कर देते हैं इस तथ्य का चित्रण नाटक के नायक मोती लाल के माध्यम से किया गया है । मोती लाल सुन्दर,स्वस्थ धनी पुरूष है वह इन्कम टैक्स आफिसर भी है । उसके दो सुन्दर बच्चे हैं और सुन्दर सुशील पत्नी है किन्तु उसे इन सबसे कोई मोह नहीं वह केवल शराब व रेस में डूबा रहता है । वह अपनी पत्नी के गहने ,आभूषण एक-एक करके रेस के लिए बेचता जाता है लेकिन विवश पत्नी सब कुछ सहन करती है । मोती लाल से डरती दबती है , परन्तु कुछ कर नहीं पाती । अपने लड़के बंटी के पैर में चोट लगने पर जब उसकी अपने पति मोती लाल से कहा सुनी हो जाती है तो बदले में उसे लात-घूंसे ,थप्पड़ मिलते हैं। ~~लेकिन~~ लेकिन इन सब का कोई विरोध नहीं करती । इस अर्थ में वह चेतनशील नारी नहीं है । परम्परा के रूप में मिली नारी प्रताडना के विरूद्ध आवाज नहीं उठाती और उसे अनचाहे सहती रहती है । नौकर बिन्नू अपने स्वाभिमान के प्रति जागरूक है । मालिक मोती लाल द्वार लगाये गये चोरी के झूठे इल्जाम को वह पुलिस डर से भी स्वीकार नहीं करता । और पीटे जाने पर मालिक का हाथ पकड़ लेता है । यह तथ्य आज के निम्न वर्ग का अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष को उजागर करता है । अन्य अनेक परिस्थितिवश समकालीन युग में निम्न वर्ग अपने अधिकारों, स्वाभिमान के प्रति चेतनशाली हैं ।

प्रस्तुत नाटक में भौतिकता की चकाचौंध में अंधे हुए व्यक्ति द्वारा पारिवारिक विघटन का चित्रण है । इस नाटक का परिवार टूटता, बिखरता तनावग्रस्त है । नौकर बिन्नू के अतिरिक्त सभी पात्र स्थिति के भोक्ता हैं । केवल बिन्नू चेतनायुक्त पात्र है ।

"घरौंदा" (1978)

– डा० शंकर शेष

शंकर शेष का "घरौंदा" महानगरीय आवास समस्या को लेकर लिखा गया है । इसमें आधुनिक जीवन की विविध जटिलताओं विवशताओं तथा विद्रूपताओं तथा यथार्थ चित्रण किया गया है । नाटक में मानव संबंधों की बढती दूरियों तथा आर्थिक संकट से संघर्षरत जीवन का चित्रण है । महानगरीय परिवेश में स्त्री-पुरूषों के संबंधों में व्याप्त बनावटीपन तथा आदर्शहीनता को उजागर कर परम्परागत नैतिक मूल्यों तथा मानव मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगाया है ।

घरौंदा नाटक व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक दृष्टि-कोण को लेकर चला है । समकालीन व्यक्ति अपनी रोजी रोटी की समस्या में इतना उलझा हुआ है कि उसके लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं रह गया है । एक चार-दीवारी घर को प्राप्त करने के लिए न तो वह परिवार के साथ रह सकता है और न ही वह समाज के प्रति कर्तव्यनिष्ठ रह पाता है । नाटक में छाया और सुदीप के माध्यम से इसी तथ्य को उदघाटित किया है । ये दोनों पाई-पाई बचाकर अपने लिए एक घर बनवाना चाहते हैं किन्तु उनका घर तो नहीं बनता, नियति उन्हें अवश्य अलग कर देती है । इसी प्रकार गुहा, चोपडा, अब्दुल आदि सभी पात्र "घर" की तलाश में हैं । इसी तलाश में "गुहा" को घर की बजाय रेल की पटरी मिलती है जिसपर लेट कर वह इस मुसीबत भरी जिन्दगी से छुटकारा पा लेता है । बहुधा इस नाटक के पात्र इसी आशा में जी रहे हैं कि उनका अपना घर होगा ।

सुदीप अपनी प्रेमिका छाया को अपने बॉस मोदी से विवाह करने को कहता है क्योंकि मोदी को दो बार हार्ट अटैक हो चुका है और तीसरी अटैक कभी हो सकता है, इसके बाद सम्पत्ति छाया की हो सकती है । छाया पहले मना करती है किन्तु विवश होकर सुदीप का कहना मानकर मोदी से विवाह कर लेती है । विवाहोपरांत छाया अपने पति मोदी से प्यार करने लगती है जिससे उसकी हालत सुधरती चली जाती है । सुदीप यह सब देखकर शराब की दुनिया में खो जाता है । अंत में अपनी मानसिक नपुंसकता तथा मूल्यहीना को पहचान लेता है ।

प्रस्तुत नाटक में आवास समस्या के कारण टूटते पारिवारिक जीवन का भी चित्रण किया गया है । गुहा और अब्दुल विवाहित होते हुए भी परिवार को शहर में नहीं ला सकते । सुदीप और चोपड़ा इसी आवास समस्या के कारण विवाह नहीं कर सकते । छाया के घर से सदस्य कमरे में रहते हैं और यही चाहते हैं कि दूसरा बाहर रहे ।"[1] एक ओर पारिवारिक जीवन बिखर रहा है तो दूसरी ओर नैतिकता टूट रही है । व्यक्ति धनवान बनने के लिए "शार्टकट्" का सहारा ले रहा है । घर का दिलासा देकर कांटेक्टर पैसे लेकर भाग जाता है और सुदीप अपनी प्रेमिका छाया को मोदी से विवाह करने को कहता है ।

इस नाटक के पात्र बौद्धिक हैं । सुदीप धनी वर्ग तथा मानव मूल्यों की अवहेलना करता है । नैतिकता उसके लिए "बोझ" समान है । "वह भौतिक चेतना" से प्रभावित है । छाया मानव मूल्यों को स्वीकार करने वाली "आदर्श-चेतना" से प्रभावित पात्र है । विवाह पूर्व सुदीप से प्रेम करने वाली विवाहोपरांत अपने पति मोदी को पूर्ण रूप से समर्पित हो जाती है । अन्य पात्र मिश्रा, सोडावाला, बड़े बाबू

1- घरौंदा - शंकर शेष - पृ0-15

सभी अपनी नियति को झेलते हुए जी रहे हैं । वे बौद्धिक होते हुए भी सोचना नहीं चाहते क्योंकि बिना सोचे उनकी जिन्दगी सरल है सोचने पर कठिन हो जायेगी ।[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महानगरीय जीवन की आवास समस्या ने संबंधों में दूरियां उत्पन्न कर दी है । इस पर करारी चोट आर्थिक जटिलता ने की है । नगरीय जीवन को व्यक्ति वादी, स्वार्थी , भ्रष्टाचारी ,अनैतिक बना दिया है । अंधी आपा धापी में प्रत्येक व्यक्ति अपने में सिमट आया है । ऐसे परिवेश में शारीरिक, नैतिक सभी स्तर पर मानव का शोषण हो रहा है । इस शोषण में व्यक्ति पिस भी रहा है और उसके प्रति आवाज भी बुलंद कर रहा है । किन्तु सही दिशा न मिल पाने के कारण सुदीप की तरह भटक रहा है ।

-::::-

1- शंकर शेष - "हमारी चिन्तशक्ति, समाप्त हो चुकी है ,बड़े बाबू । सोचते नहीं इसीलिए जिन्दा हैं,सोचेंगे तो मर जायेंगे । -पृ0-24

"पीली दोपहर" (1978)
- जगदीश चतुर्वेदी

आदर्श चेतना से प्रभावित "पीली दोपहर" ऐसा लघु नाटक है, जिसमें पति-पत्नी दोनों को कर्तव्य का बोध कराया गया है । प्रो० सुधांशु अपनी पत्नी के स्वास्थ्य के प्रति बेहद चिंतित हैं । इनकी पत्नी रेखा को तपेदिक हो गया है । और इसका दोषी वे स्वयं को मानते हैं । इसलिए उसकी सेवा सुश्रुषा में कोई कसर नहीं छोड़ते । दूसरी ओर रेखा अपनी इस छूत की बीमारी के कारण पति को अपने पास आने व बोलने तक के लिए मना करती है । प्रो०सुधांशु अपनी पत्नी को तपेदिक के अस्पताल ले जाते हैं, जहां कान्ता नाम की नर्स से उनका परिचय होता है । कान्ता प्रो० की ओर आकर्षित होती हैं । प्रो० भी कान्ता की ओर आकर्षित होते हैं परन्तु उसे महत्व न देकर भावना को दबाना चाहते हैं । अंत में उनकी पत्नी रेखा की मृत्यु हो जाती है । कान्ता उनसे विवाह करना चाहती है परन्तु प्रो० सुधांशु उससे विवाह नहीं कर पाते ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में नाटक कार ने यथार्थ भी भूमि से उठ कर आदर्शवादी तथ्य को चित्रित किया है । प्रेम के त्रिकोण में दार्शनिक प्रो० के मानसिक द्वंद्व व तनाव को अभिव्यक्त करके आदर्श पूर्ण धरातल पर अंत किया है । कथावस्तु प्रभावशाली होते हुए भी अतिशय काल्पनिक है । इसीलिए वह आधुनिक जीवन की विसंगततयों, जटिलताओं व समस्याओं को सम्यक् व प्रभावपूर्ण रूप से नहीं उभार पाती है । नाटक का नायक डा० सुधांशु "आदर्श चेतना" से प्रभावित, जागरूक व्यक्ति है तो उसकी पत्नी रेखा भावुक, धर्म भीरू तथा "आदर्शवादी है । इसप्रकार सम्पूर्ण नाटक पर "आदर्श चेतना" का प्रभाव झलकता है ।

-::::-

"कपास के फूल" (1978)

– जगदीश चतुर्वेदी

गांदीवादी सिद्धान्तों, ग्राम चेतना ,प्रौढ़ शिक्षा,समानता आदि आदर्शों को लेकर लिखा गया नाटक "कपास के फूल" है । छोटे -छोटे कुटीर उद्योग धंधे स्थापित करके तथा समय का सदुपयोग करके किस प्रकार हम अपने गांवों को खुशहाल बना सकते तथा बेरोज़-गारों को रोज़गार दिला सकते हैं, इस तथ्य को रामू, केसर,सरदार, गुरूदेव आदि पात्रों के माध्यम से स्पष्ट किया है । समकालीन युग में गांवों में नई चेतना व जागृति आ रही है । लोगों में ऊँच-नीच का भेदभाव दूर हो रहा है और समानता का बोध उभर रहा है । सरदार कहता है -"अब तो वह ऊँच-नीच के बन्धन भी समाप्त हो गये, जब एक इन्सान की कीमत करोड़ों नन्हीं सी जानें होती थीं, जबकि सामंतशाही की जड़ें जन-जीवन में समाई थीं ।"[1] और इस भेद-भाव को दूर करने में राजनीति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । राजनीति के द्वारा ही जनसाधारण में अपने अधिकारों व अस्तित्व के प्रति चेतना आई है ।

प्रस्तुत नाटक "कपास के फूल" के ग्रामीण जीवन में सुधार और उत्तरोत्तर उन्नति के चित्र को प्रस्तुत करता है ।

-::-

1- कपास के फूल - जगदीश चतुर्वेदी - पृ0-71

"राम की लड़ाई" (1979)
– डा० लक्ष्मीनारायण लाल"

प्रस्तुत नाटक में डा० लाल ने पौराणिक पात्रों व घटनाओं के माध्यम से समकालीन भ्रष्ट राजनीति, साम्प्रदायिकता तथा नेताओं की तानाशाही का सफल चित्रण किया है । नाटक की कथा "धनुष यज्ञ" प्रसंग पर आधारित है । "धनुष" हमारे देश का प्रतीक माना गया है । जो साहसी धनुष पर प्रत्यांचा चढ़ा देगा वही जानकी अर्थात् सत्ता का वरण करेगा । किन्तु हमारा यह धनुष पहले भी अनेक बार भंग हो चुका है । कभी अंग्रेज़ों ने इसे भंग किया, तो कभी ज़मींदारों ने, और अब नेता इसे भंग कर रहे हैं । राम प्रत्येक बार पीछे रह जाता है । वह समाज व राज्य के अन्याय सहते सहते मूढ़ मति सा बन गया है । दूसरों की चालों, षड्यन्त्रों में फंसाकर हत्याओं व डकैतियों की सजाओं में उसे जेल भेजा जाता रहा है । रामलीला में राम का अभिनय करने वाला राम गुलाम निम्न जाति का युवक है जो ब्राह्मण पुत्री बिमला से विवाह करना चाहता है किन्तु ऊँच-नीच का भेद उनके बीच आ जाता है । पर साहसी बिमला उसे दृढ़ता से विवाह करने को कहती है । अंत में विश्वामित्र की वाणी- उठो राम, इस धनुष के ऊपर जितना कूड़ा कचरा, युगों का मलबे का अम्बार लगा है, उसके भीतर हाथ डालकर उठाओ, इस विराट पिनाक को, जिससे हम सब इसके सत्य और सौन्दर्य को देख सकें ।"[1] आज ऐसे ही राम की आवश्यकता है जो देश रूपी धनुष पर पड़े अंधविश्वासों, रूढ़ियों, ऊँच-नीच के भेदभाव के मलबे को दूर करके उसके सुसंस्कृति व सत्य रूप को दिखा सके । जाति बन्धन तोड़ कर उच्च वर्ग व निम्न वर्ग में समानता ला सके। इस नाटक में उच्च वर्णी बिमला आदर्श चेतना से प्रभावित है । जागरूक है । समाज से लड़ती है । इस प्रकार नाटक में नारी चेतना भी अभिव्यक्त है । राम गुलाम बिमला की अपेक्षा कम साहसी है । समाज के समक्ष वह अपनी मान्यताओं को स्थापित नहीं कर पाता ।

-:::-

"आज नहीं तो कल" (1979)
- सुशील कुमार सिंह

सुशील कुमार कृत नाटक "आज नहीं तो कल" में भ्रष्ट राजनीति के छल प्रपंच का व्यंग्य के द्वारा अभिव्यक्त किया है । जिसमें युगीन नेताओं के कार्यकलापों व मन:स्थितियों का पर्दाफाश किया गया है ,। नौकरशाही, सत्ताशाही, नेताशाही ने समाज तथा देश के वातावरण को इतना दूषित कर दिया है कि वैयक्तिक ,सामाजिक, राजनैतिक तथा नैतिक मूल्य सड़ते-गलते से प्रतीत हो रहे हैं । यद्यपि जनता नेताओं के झूठे आश्वासनों और खोखली नारे बाजी से परिचित हो चुकी है , फिर भी उनको प्रतिनिध बनाने के लिए विवश है । मानसिक आक्रोश व तनाव से ग्रस्त जनता, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति न होते देख कर कुंठित हो जाती है । कुछ भी करने में असमर्थ वह राजनीति पर व्यंग्य करती है ।

प्रस्तुत नाटक में देश की राजनीतिक बदलती परिस्थितियों का चित्रण किया गया है । राजनीति में "अहिंसा" एक दिखावा, खोखला नारा है । यहाँ भाई-भतीजावाद, जातिवाद, भाषावाद के नाम पर वोट बटोरी जा रही है । नाटककार ने एक पात्र के माध्यम से कहा है-" हरिजन समस्या इस देश की सबसे बड़ी समस्या है और एक महत्वपूर्ण कुंजी है सत्ता में बने रहने के लिए ------- इसलिए सुबह-शाम हरिजनों का नाम जपो ----- हरि मिल जायेगा --- जन की परवाह मत करो ।"[1] इस नाटक में साठोत्तर काल की राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, दलबंदी, गुटबंदी और एक-दूसरे पर दोषा-रोपण के तथ्यों को व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है । सन् 1975

1- आज नहीं तो कल - सुशील कुमार सिंह - पृ0-18

से 77 तक कांग्रेस पार्टी के अत्याचारों तथा जनता पार्टी की आपा धापी से उसकी असफलता को कथावस्तु बनाया है । अपनी कमजोरी छिपाने के लिए एक पार्टी किस प्रकार दूसरी पार्टी पर दोषारोपण करती है, झूठे लांछन लगाती है, इस तथ्य को प्रकट किया गया है । देश में अकाल, आन्दोलन , हत्या होने पर विरोधी पार्टी का षड्यंत्र कह दिया जाता है । देश की गरीब जनता पर तूफान का प्रकोप हो, अकाल का हो या बाढ़ का प्रकोप हो, नेता अपना घर भरने तथा हेलीकाप्टर से दौरा करने में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है । नेताओं की स्वार्थपूर्ति तथा सत्ता लिप्सा की दौड़ में सामाजिक वातावरण इतना भयावह हो गया है कि भोली-भाली गरीब जनता अपने को असुरक्षित अनुभव कर रही है --"एक ओर आपातस्थिति में हजारों हत्याओं की जिम्मेदार एक तानाशाह और दूसरी ओर चासनाला दुर्घटना पंतनगर का गोलीकाण्ड -- बस्तर में आदिवासी स्त्रियों के साथ बलात्कार - धनबाद के गरीब कोयला खान मजदूरों की जान से खिलवाड़ और हर रोज राहजनी, बलात्कार तथा हत्याओं को तमाशे की तरह देखकर आंख मूंद लेने वाले ये कुर्सीपरस्त ------ ।"[1] इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में कुर्सी से चिपके, अशक्त नेताओं का अनैतिक, कर्तव्यहीन, भ्रष्टाचारी रूप उजागर किया है । जनता विद्रोही भी होती है तो आपात् स्थिति लागू हो जाती है, जेल, लाठी चार्ज, आंसू गैस आदि से कुचल दिया जाता है । नाटक के पात्र युवक तथा युवती नई पीढ़ी के विद्रोह को अभिव्यक्त करते हैं । (वे देश के कर्णधारों के विरूद्ध आवाज उठाते हैं) युवा पीढ़ी की चेतना का प्रतीक युवक कहता है- "नहीं ------ अब और नहीं । बिलकुल नहीं ----- हम तुम्हें नहीं ढोयेंगे । हमारे कंधे अब तुम्हारी अर्थी पर लगेंगे -- लाल रंग आयेगा

1- आज नहीं कल - सुशील कुमार सिंह - पृ0 32

और जरूर आयेगा । "[1] इसके विपरीत पुरूष व स्त्री निरीह जनता के प्रतीक हैं । जो इस समस्त वातावरण को अपनी नियति मान सहन करने के आदी हो चुके हैं । वे भ्रष्ट राजनीति के हथकण्डों को झेल चुके हैं -"मुट्ठियाँ उठाओगे, तो हाथ तोड़ दिये जायेंगे - -- सिर उठाओगे, तो सिर कुचल किया जायेगा ---- यही उनका खेल है इसलिए खामोश रहो ---- चुप रहो ---- होंठ सी लो, कुछ मत बोलो ---- चुपचाप सहते रहो ।"[2] इस प्रकार नेताओं के दुष्चक्रों से जनता तिलमिला रही है । सब कुछ समझ कर भी चुप रहती है ।

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने सब्जी को नेताओं का प्रतीक माना है । आधुनिक विषम परिस्थितियों ने राजनीति में आदर्श चेतना के स्थान पर यथार्थवादी व भौतिकवादी चेतना को तीव्रतर किया है । जिसके परिणामस्वरूप सत्ता लोलुपत्ता, स्वार्थ पूर्ति, अनैतिकता का बोलबाला हो गया है । इसके प्रति युवा पीढ़ी ~~चेतन~~ चेतनशील है । इस तानाशाही के विरूद्ध आवाज उठा रही है । इस को उद्घाटित करना ही नाटक का उद्देश्य है ।

-:::::-

1- आज नहीं कल - सुशील कुमार सिंह - पृ0- 40

2- वही - - पृ0 - 36

"पाँचवां सवार" (1979)
"-बलराज पंडित

बलराज पंडित कृत नाटक "पाँचवां सवार" नाटक आधुनिक सामाजिक, राजनैतिक और पारिवारिक जीवन की विभिन्न असंगतियो विसंगतियों तथा मानवीय कुंठाओं को उजागर करता है । यह नाटक शिल्पगत नये दृष्टिकोण तथा कथ्य की नवीनता की खोज करता है । कथाविहीन यह नाटक घटनाओं की असम्बद्धता को लेकर चलता है । तथा पात्रों का अपना कोई विशिष्ट व्यक्तित्व नहीं झलकता है ।

नाटक का प्रारम्भ , चार बूढ़ों की बातचीत से होता है, जो अखबार की खबर को लेकर चलती है । इस अखबार की खबर को लेकर बूढ़ों की अनेक प्रतिक्रियायें होती हैं । दूसरे दृश्य में वही बूढ़े नेताओं के रूप में आते हैं । नेता और युवा छात्र की बातचीत में राजनीति का खोखलापन झलकता है । नेता युवा वर्ग की समस्याओं को हल करने तथा छात्र वर्ग का भला करने का आश्वासन देते हैं । लेकिन नेता को न तो समस्या को जानकारीहै और न ही समस्या केबारे में गम्भीरता से सोचा है । छात्र कहता है कि हमारी समस्यायें दूसरी हैं । इस प्रकार छात्र नेता के वार्तालाप से राजनैतिक झूठे आश्वासन, भ्रष्टाचार तथा स्वार्थ लिप्सा उद्घाटित होती है । इसे पश्चात् युवक और एक दो तीन अन्य छात्रों के माध्यम से युवा पीढ़ी में व्याप्त असंतोष, बेकारी की समस्या तथा कर्तव्यहीनता को चित्रित किया है । युवक व लड़की के माध्यम से स्वच्छंद यौन चेतना को उद्घाटित किया है ।

प्रस्तुत नाटक में बाप-बेटे के संवादों में युवा पीढ़ी व पुरानी पीढ़ी के संघर्ष को चित्रित किया है । बाप की भाषा में जहाँ

बड़प्पन, तीखापन, व्यंग्य तथा आदेश है, वहीं युवक के संवादों में दब्बूपन, असंतोष तथा कुंठा दृष्टिगोचर होती है । तत्पश्चात् अगले दृश्य में पति-पत्नी के टूटते पारिवारिक सम्बन्धों, बदलते मूल्यों तथा जीवन के नये मानदण्डों को अभिव्यक्त किया है । यहाँ 'पार्टी' शब्द सांकेतिक है । लड़की अपने प्रेमी के साथ देर से आती है और पिता को "पार्टी" में जाने का झूठा बहाना बनाती है । और जब उसे पता चलता है कि ममी भी पार्टी (?) में गई है तो वह सकपका जाती है ।

इस प्रकार कथा विहीन इस नाटक में बदलते दृश्यों के माध्यम से आधुनिक जीवन की जटिलताओं, विद्रूपताओं, व्यक्ति मन की कुंठाओं तथा चेतनशील होते हुए भी सहन करने की विवशता को उद्घाटित किया गया है ।

-::-

"तीसरा हाथी" (द्वि•स०-1979)
- रमेश बक्षी

रमेश बक्षी कृत "तीसरा हाथी" नाटक में युवा पीढ़ी की व्यक्तिगत, स्वच्छंदता, स्वतंत्रता, इच्छाओं के परिपेक्ष्य में ~~किस~~ टूटती प्राचीन परम्पराओं, मान्यताओं एवं नैतिकताओं को चित्रित किया है। युवा पीढ़ी वैयक्तिक चेतना से प्रभावित हो निरंकुशता के आधार पर वर्जनाओं के प्रति आक्रोश व्यक्त कर रही है। माता-पिता के संरक्षण से मुक्त होना चाहती है। पिता के अत्याचारों को सहन नहीं करती, उसके विरुद्ध आवाज उठाती हैं।

नाटक में दो पीढ़ी के संघर्ष को प्रदर्शित किया है। पूरे नाटक में "पिता" किसी भी दृश्य में उपस्थित नहीं होता, फिर भी उसकी अनुपस्थिति ही उपस्थिति का सा भान कराती है। कमरे की प्रत्येक वस्तु, बच्चे यहाँ तक कि रोगी पिता के कमरे से बजने वाली बजर तक सहमी हुई प्रतीत होती है। बचपन में पिता के कठोर अनुशासन में पले बच्चे युवा होने पर मन का आक्रोश निकालते हैं - सोहन-"बाप हो तो ऐसा - (गम्भीर होकर) पापा का बस चले तो हमारी कब्र खुदवाकर बाद में मरें। - हुंह - पिता की आत्मा को शान्ति के लिए जो एक चीज छोड़नी है उसका फैसला भी खुद करके मरेंगे।"[1] रोगी पिता की सेवा में लगी बड़ी बेटी शुभा घुट घुट कर जी रही है। उसे हिस्टिरिया के दौरे आते हैं। मंझला लड़का रोशन पिता की तानाशाही के कारण आत्महत्या कर लेता है। बड़ा लड़का मोहन बचपन में पापा से बेहद मार खाकर नपुंसक हो चुका है। इस प्रकार सारा घर ही एक प्रकार के दमघोटू वातावरण से युक्त है, जिसमें सभी छुटकारा पाने को छटपटा रहे हैं।

1- रमेश बक्षी - तीसरा हाथी - पृ० - 55

"तीसरा हाथी" नाटक में मुख्य रूप से वैयक्तिक-चेतना से विभा, सोहन, तथा अमित प्रभावित पात्र हैं । वे अति बौद्धिक हैं इसीलिए पुरानी परम्पराओं, मान्यताओं व आदर्शों को नकार रहे हैं । पुरानी मान्यताओं के प्रतीक "हाथी" को गिराने का समर्थन करते हैं । बड़ी लड़की शुभा परम्परावादी दृष्टिकोण की है उसे डर है कि "हाथी" के गिरने के सदमों को पिता जी सहन नहीं कर पायेंगे, इसीलिए वह "हाथी" न गिराने पर बल देती है । पिता की लम्बी बीमारी तथा अपने अविवाहित रहने पर कुंठित है, फिर भी पिता की सेवा करती है । वह "आदर्श चेतना" से प्रभावित है । विभा और सोहन भाई-बहिन होते हुए भी अमर्यादित हैं । वे दोनों यथार्थवादी "भौतिक चेतना" से प्रभावित हैं । "मोहन" लिजलिजा "पात्र" है ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक में अत्यधिक अनुशासन तथा स्नेहाभाव में टूटते परिवार का चित्रण है । साथ ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता के आधार पर धूमिल होती मर्यादाओं, आदर्शों, शिष्टाचार व पुरानी परम्पराओं का यथार्थ रूप भी उद्घाटित किया है ।

-::-

"कुत्ते" (1979)

- डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल "चन्द्र"

प्रस्तुत नाटक "कुत्ते" में नाटककार ने आधुनिक जीवन में टूट रहे मूल्यों पर प्रकाश डाला है । आर्थिक संकट से त्रस्त नारी घर से बाहर निकल कर पुरूषों के साथ कार्य कर रही है, किन्तु इस प्रक्रिया में उसे अनेकानेक संकटों, मनस्थितियों से गुजरना पड़ रहा है । नैतिकता तथा पाप पुण्य की धूमिल मान्यताओं के कारण स्त्री का सतीत्व, उसकी पवित्रता खतरे में पड़ गई है । आज स्त्री-पुरूष के परस्पर मूल्य बदल रहे हैं । नारी के प्रति आदर भाव क्षीण होता जा रहा है ,वह नारी को केवल मात्र नारी ही समझ रहा है। इन सब अनुभवों से गुजरते हुए नारी में नई चेतना व आत्मविश्वास झलक रहा है । वह पुरूषों को बातों से ही उलझाये हुए अपने अस्तित्व की रक्षा में संलग्न है ।

प्रस्तुत नाटक में दो लड़कियों आभा व राका के माध्यम से काम काजी महिलाओं के आन्तरिक बाह्य संघर्ष का चित्रण किया है ।आधुनिक युग में यह विडम्बना है कि यहाँ आदर्शवादी टूट रहा है ,उद्विग्न है, विक्षिप्त सा है । राका ऐसा ही पात्र है । वह पिता के मरणोपरांत मजबूरी मेंनौकरी करती है । वह आदर्शवादी है इसलिए "गलत" सहन नहीं कर पाती है । इसी कारण वह असन्तुष्ट ,बेचैन व टूटी हुई है । दूसरी पात्र आभा है, जो 'व्यवहारिक-चेतना' से प्रभावित है । वह पुरूषों बातों-बातों में उलझाये हुए ही अपना काम निकालना जानती है । और वह राका को भी इसी व्यवहारिकता को अपनाने की सलाह देती है - "आज सीधे का जमाना नहीं है । थोड़ा चालाक बनो, और दूसरों को बुद्धू बनाओ । मुस्कुराना और बातों में फंसाए रखना ही आज की कला है ।[1] यही व्यवहारिकता आज की नारी का आवरण बनी हुई

1- कुत्ते - सुरेश चन्द्र शुक्ल "चन्द्र" - पृ0- 33

है । उक्त नाटक में आभा "व्यवहारिक-चेतना" से सम्पृक्त है तो राका "आदर्श-चेतना" से प्रभावित है । बड़े बाबू व कपूर साहब मानसिक विकृति के द्योतक हैं । नाटक में भौतिकता व आधुनिकता के कारण टूटते सामाजिक व नैतिक मूल्यों को चित्रित किया है । नारी स्वतंत्र होकर अपनी इच्छानुसार विवाह करती है । और "एडजैस्ट" न होने पर उतनी सरलता से तलाक भी ले लेती है । उसके समक्ष मातृत्व, वात्सलय आदि के भाव फीके पड़ रहे हैं । सीता व डेनियल के प्रेम -प्रसंग के माध्यम से नाटककार ने इस तथ्य को उजागर किया है ।

"कुत्ते" प्रतीक के माध्यम से आज के कुत्सित मनोवृत्ति वाले, भ्रष्टाचारी, कुदृष्टि वाले पुरुषों के ~~लिए प्रयुक्त~~ आचरण को उद्घाटित किया है । इसप्रकार नाटककार ने समकालीन समस्या को प्रस्तुत किया है ।

-:::-

"तू- तू" (1979)
- अस्तानन्द सदासिंह

"तू-तू" नाटक में आधुनिक युग की राजनीति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें सत्ताधारी और नौकरशाही वर्ग अवसरवादी होकर भोली-भाली जनता का खून चूसते हैं । वास्तव में देखा जाये तो आज की राजनीति इतनी भ्रष्ट और विषैली हो गई है कि स्वार्थ पूर्ति का साधन, एक व्यवसाय बन गई है । झूठे आश्वासनों पर चुनाव जीतना, षड्यन्त्रों द्वारा दूसरे को हराना, और जीतकर जनता को ही चूसना नेतागण अपना परम उददेश्य मान रहे हैं । चुनाव से पहले दिए गये आश्वासन कभी पूरे नहीं होते । पांच साल के लिए नेता अपने कर्तव्यों से आंख मूंद कर स्वार्थपूर्ति में लगा रहा है , और उन्हीं आश्वासनों का प्रयोग फिर दोबारा करता है । आज समाज में भाई-भतीजावाद, सिफारिश , रिश्वत व्यक्ति को नौकरी, घर व पद दिलाती है ।

स्वतंत्रता पूर्व राजनीति उच्च आदर्शों से सम्पृक्त थी, किन्तु आज स्वार्थपूर्ति का साधन बन गई है । इसलिए दलगत बनी व्यक्तिवादी दायरों में पनप रही है । आज पालिटिक्स का अर्थ है झूठे वायदे और धोखेबाजी ।[1] चमचे अर्थात् अवसरवादी चापलूस इस राजनीति के निरन्तर रिसते नासूर बन गये हैं ।

प्रस्तुत नाटक में "चाचा" नेता वर्ग का प्रतीक जनता का भाग्य विधाता बना हुआ है । वह अपने चमचों द्वारा अपने जलसे करवाता है , किराये पर लोग बुलाकर अपने को फूलमाला पहनवाता है, दंगे-फसाद करवाता है और अपनी मूर्ति बनवाता है । चाचा के लिए अपने निजी स्वार्थ हेतु निर्दोष लोगों की हत्या करवाना, आगजनी, लूटपात आदि की घटनाएं आम बात हैं । "--- भाइयों के घर उजड़वा दिये, कितनों के गले उतरवा दिये । एकता के बल पर लोग गुलामी

1- तू-तू - आस्तानन्द सदासिंह - पृ0-72

दूर करना चाहते थे पर हमने अंग्रेजों के साथ मिलकर गुलामी को आबाद किया । आवाज बुलंद करने वालों को फांसी लगवा दी ।"[1] समकालीन राजनीति ने वातावरण को ऐसा दमघोटू बना दिया है कि व्यक्ति चैन की सांस लेने को तड़प रहा है । एक एक दाने को तरस रहा है जबकि नेता लोग बिल्ली के जन्म दिन तक मनाते हैं[2] नाटककार ने इस तथ्य को भी व्यंग्य के माध्यम से उभारा है कि किस प्रकार नेता अपने स्वाभिमान को त्याग कर पैसों के लालच में बड़े लोगों, सम्पन्न राष्ट्र के तलुए चाट रहे हैं । उनके द्वारा दान किये धन को जनता के उपयोग में न लगाकर अपनी उदर पूर्ति में लगा रहे हैं । "चाचा" अपने प्रशंसक कुत्तों को मार डालता है । क्योंकि उसे डर है कि वे उसकी असलियत खोल देंगे । आज का नेता भी अपने मार्ग में बाधक को हमेशा के लिए हटा देता है । पर उनका भी कभी अन्त होता है, जैसे बुलडोग अन्त में "चाचा" को मार देता है अर्थात् जनता विद्रोही बन जाती है तो वह अन्याय को खत्म कर देती है । यही चेतना के स्तर इस नाटक में गूंज रहे हैं ।

इस प्रकार समस्त नाटक आज के युग की भ्रष्ट, विषाक्त राजनीति, भाई-भतीजावाद, चमचावाद, सत्तावाद, स्वार्थलिप्सा, जाति-पांति आदि का नग्न चित्रण किया है । लालच में लिप्त व्यक्ति विद्रोह को चेतना त्यागकर अव्यवस्था में सम्मिलित हो रहे हैं और जब विद्रोह किया जाता है तो उन्हें हंटरों से पीटा जाता है । भुखमरी से मारा जाता है, षड्यन्त्र से मारा जाता है । किन्तु चेतनशील होने पर अव्यवस्था का अंत भी कर देता है । इसी तथ्य को नाटककार ने उद्घाटित किया है ।

1- तू-तू - आस्तानन्द सदासिंह - पृ0- 75

2- - वही - पृ0-52

"सुनो शेफाली" (1979)
- कुसुम कुमार

उभरते नाटककारों में कुसुम कुमार ने "सुनो शेफाली" नाटक में सामाजिक संदर्भों को बौद्धिक चेतना के आधार पर उभारा है। नाटक में निम्न वर्गीय जीवन की कटुताओं, मजबूरियों, विषमताओं, विद्रूपताओं का चित्रण किया गया है। नाटक के पात्र बौद्धिक होने के कारण कहीं कहीं पर नैतिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। अपने अस्तित्व के लिए पुरानी पीढ़ी से संघर्षरत भी हैं। लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के शब्दों में - आज के युग में पुराने प्रतिमान बड़ी तेज़ी के साथ ढह पड़े हैं और पुरानी पीढ़ी अविश्वास और विचित्र आशंका से नई पीढ़ी, नये उभरने वाले मूल्यों और आधुनिकता की नवीनतम प्रवृत्तियों को देख रही है और नई पीढ़ी को सारे पुराने प्रतिमान रूढ़ और अव्यवहारिक प्रतीत हो रहे हैं।"[1] प्रस्तुत नाटक में पात्रों की दृष्टि "व्यवहारिक-चेतना" से प्रभावित हैं। इसीलिए प्रेम के प्रति तार्किक दृष्टिकोण ने भावात्मक संबंधों को बौद्धिक धरातल पर उतारा है। नाटक में स्त्री-पुरुष संबंधों, यौनाचार, वर्ग चेतना आदि को अधिक स्थान मिला है।

प्रस्तुत नाटक में निम्न वर्ग में उभर रही स्वाभिमान व स्व अस्तित्व की भावना को शेफाली के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। शेफाली पढ़ी-लिखी हरिजन युवती है। वह सवर्ण बकुल से प्रेम करती है किन्तु उससे विवाह करने से इन्कार कर देती है, क्योंकि बकुल का पिता दीक्षित समाज सेवा की आड़ में अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु उसे पुत्रवधू बनाना चाहता है। चुनाव समय निकट है इसलिए वह समाज को दिखा देना चाहता है कि वह वास्तव में समाज सेवी है। परन्तु

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-पृ०-69

स्वाभिमानी शेफाली उसके विचारों को समझ कर स्वंय को चाल का मोहरा नहीं बनने देती और अंत तक उसके विरूद्ध लड़ती रहती है । वह अपनी भावनाओं को दबाती है ,मां को झिड़कती है । लेकिन अंत में अपनी अनुपस्थिति में बहन को अपने प्रेमी बकुल के साथ दुल्हिन रूप में देखकर टूट जाती है ।

"सुनो शेफाली" नाटक में उच्च वर्ग के हथकण्डों व निम्न वर्ग को विचार धारा व मनस्थितियों का चित्रण है । उच्च वर्ग अपनी सफलता के लिए निम्न वर्ग को मार्ग की सीढ़ी बना रहा है । इसीलिए दीक्षित भी शेफाली का विवाह चुनाव के समय पर ही अपने पुत्र से करना चाहता है और स्वार्थ हेतु ही जाति-पांति के बंधन तोड़ रहा है ।

नाटक की नायिका शेफाली स्वाभिमानी 'वैयक्तिक-चेतना' से प्रभावित है । वह बौद्धिक है इसीलिए शारीरिक पवित्रता,शील,जाति-पांति को महत्व नहीं देती है । अपने स्वस्तित्व की भावना के कारण भावना को महत्व नहीं देती और अपने प्रेमी को त्याग देती है । इसप्रकार शेफाली "व्यवहारिक चेतना" से प्रभावित है । आचार्य मनन व दीक्षित भी "व्यवहारिक चेतना" से प्रभावित हैं ।

इस प्रकार नाटककार ने स्वातंत्र्योत्तर काल में पनप रही निम्न वर्गीय चेतना को उद्घाटित किया है । आज निम्न वर्ग अपने अधिकारों, अस्तित्व व स्वाभिमान के प्रति जागरूक हैं । इस तथ्य का उद्घाटन शेफाली के माध्यम से किया गया है ।

-:::::-

" एक चीख अंधेरे की " (1980)
– गोपाल उपाध्याय

गोपाल उपाध्याय का नाटक " एक चीख अंधेरे की " ग्रामीण अंचल की कुरीतियों, विसंगतियों पर कुठाराघात करने वाला नाटक है । प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने फौजी की पत्नी की समस्याओं, गांववालों का उसके प्रति दुर्व्यवहार तथा उसके प्रति कर्तव्यबोध का चित्रण किया है ।

नाटक की कथा हवलदार नरहरि सिंह की पत्नी मोतिया को लेकर लिखी गई है । नरहरि सिंह फौज में चला जाता है । उसकी असहाय, अनपढ़ जवान पत्नी मोतिया गांव के भेड़िया प्रवृत्ति वाले, पंडित जी, ठाकुर आदि व्यक्तियों के बीच में अकेली रहती है । गांव के लोग उसको बुरी नजरों से देखते हैं और अपनी इच्छा पूर्ति न होने पर उल्टा मोतिया पर ही दोष लगाकर उसे कलंकी दुश्चरित्रा बताते हैं । गांव के प्रधान का लड़का गोविन्द पढ़ा लिखा समझदार युवक है । एकमात्र वही मोतीया की मजबूरी तथा फौजी की पत्नी के प्रति कर्तव्य को अनुभव करता है । किन्तु लोभी गांव वाले उस पर भी लांछन लगाते हैं । अब मोतिया एकदम अकेली निस्सहाय खुंखार भेड़ियों के बीच रह जाती है ,कि तभी उस पर वज्राघात होता है । सरकार की तरफ से उसके पति की लड़ाई में मारे जाने की सूचना आती है । वह दुख से टूटी अंधेरे में डूब जाती है ।

यह नाटक सीधी सपाट शैली में लिखा गया है । गोविन्द "आदर्श चेतना" से प्रभावित है । अन्य सभी पात्र संकुचित दृष्टिकोण लिए हुए हैं ।

---::::--

"सम्भवामि युगे-युगे" (1980)
- जि0जे0 हरिजीत

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीति के क्षेत्र में भ्रष्टाचार, घूसखोरी, स्वार्थलिप्सा, सत्ता लोलुपत्ता आदि विद्रूपताओं का साम्राज्य स्थापित हो गया है । नेताओं की आदर्श हीनता एवं अनैतिकता ने राजनीति को दांव-पेच का अखाड़ा बना दिया है ।देश प्रेम, देश कल्याण, सेवा ,त्याग जैसे मूल्य तिरोहित हो गये हैं और उनके स्थान पर येन-केन-प्रकेरण सत्ता प्राप्ति का भाव आ गया है । सामान्य नागरिक विशेष रूप से बुद्धिजीवी मकड़ी के जाले में फंसे कीड़े के समान तिलमिला रहे हैं लेकिन कुछ भी बोलने व करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। प्रजातंत्र होते हुए भी तानाशाही पल रही है । परिणाम स्वरूप जन साधारण की राजनीति के प्रति आस्था उठ गई है । किन्तु अनचाहे उसे सब सहन करना पड़ रहा है । प्रस्तुत नाटक "संभवामि युगे युगे" में भी महाभारत कालीन प्रसंग को लेकर समसामयिक राजनीति का चित्र प्रस्तुत किया है । दुर्योधन, दु:शासन, धृतराष्ट्र जैसे राज नेता आज भी विद्यमान हैं । जो सत्ता प्राप्ति हेतु उन्हीं के समान अनेक षड्यन्त्रों ,हथकंडों आदि का सहारा ले रहे हैं और शकुनि जैसे भ्रष्ट सलाहकार भी है जो झूठे आश्वासनों से जनता को भी बहलाये हुए हैं और शासक वर्ग को भी अंधा बनाये हुए हैं । इनके जाल में फंसी निरोह भोली-भाली जनता मंहगाई, तानाशाही ,भ्रष्टाचार रूपी सर्पों से लड़ रही है । यदि कोई आहत बुद्धिजीवी आवाज उठाता है तो उसकी आवाज मौन होकर रह जाती है ।

प्रस्तुत नाटक में शकुनि अवसरवादीनेता के रूप में चित्रित है । जो धृतराष्ट्र को उलझाये रहता है । उसे पाण्डवों के विरूद्ध भड़काता रहता है । वह धृतराष्ट्र को पाण्डवों से युद्ध करने की सलाह देता है, तो दूसरी ओर जनता को लुभावने भाषण से रिझाता है "-- मैं

जानता हूं कि आप प्रजाजनों को आगामी युद्ध के कारण कितना कष्ट उठाना पड़ रहा है । यह कष्ट आपके लिए ही नहीं, हमारे लिये भी है । हमारे पास लौहाभिहार के लिए भी पर्याप्त समय नहीं है । वैसे तो मैं चाहता हूं कि युद्ध स्थगित हो और इसके लिए मैं प्रयत्न भी करूंगा।"[1] इसी तरह आज भी जनता इन दोहरे व्यक्तित्व वाले नेताओं से त्रस्त है । सत्ता की होड़ में होने वाले चुनाव का नाटक और उसके बाद की विषम स्थिति, आर्थिक संकट आदि ने जनता को गहरे अंधकार में ढकेल दिया है । संघर्षरत जनता के सुख दुख की किसी नेता को नहीं होती है । नागरिक एक अपने मन का आक्रोश व्यक्त करता है ---"हमारे जीने या न जीने की किसको चिन्ता है ? स्वार्थों की टक्कर की मार हमें सहनी पड़ रही है ।"[2] नाटककार ने नागरिक तीन के माध्यम से बुद्धिजीवी वर्ग की चेतना को अभिव्यक्त किया है । नागरिक तीन इस अव्यवस्था से दुखी, तिलमिलाया हुआ है। इस भ्रष्टाचार के प्रति वह आक्रोशित है । वह जन-साधारण में अव्यवस्था के प्रति आवाज बुलन्द करने की चेतना जागृत करता है ।-" जब तक हम यही समझते रहेंगे कि हमारी परवाह कौन करता है, कोई हमारी परवाह नहीं करेगा । हमें अपनी आवाज उठानी चाहिये ।"[3] किन्तु जन समर्थन के अभाव में उसका विद्रोह तीव्र नहीं हो पाता । किन्तु नाटक के अंत में जनता की शक्ति,उसके समर्थन का प्रतीक भीम, धृतराष्ट्र रूपी अंधी सत्ता को नष्ट कर देता है । यही चेतना है । नाटक कार ने इस तथ्य के माध्यम से जन साधारण की चेतना को अभिव्यक्त किया है ।

साठोत्तर काल में विकसित हो रही राजनैतिक चेतना का चित्रण प्रस्तुत नाटक में किया गया है ।

-:::-

1- सम्भावामि युगे-युगे - जि0जे0 हरिजीत - पृ0-50
2- ,, ,, ,, पृ0-41
3- ,, ,, ,, पृ0-46

"उत्तर-उर्वशी" (1980)
- हमीदुल्ला

हमीदुल्ला कृत "उत्तर-उर्वशी" नाटक में टूटते सामाजिक राजनैतिक एवं नैतिक मूल्यों का चित्रण किया गया है । आधुनिक नाट्य कृतियां यथार्थवादी स्तर पर, राजनैतिक भ्रष्टाचार, आधुनिकता के खोखलेपन, नारी जीवन में बढ़ती स्वच्छंदता, कुंठित यौनवृत्ति आदि को केन्द्रीभूत लेकर चले हैं । इस नाटक में भी समाज के विभिन्न वर्गों की बदलती हुई मनस्थितियों को उद्घाटित किया है । आधुनिक जटिल परिस्थितियों में फंसा आदमी निकलने के अनवरत संघर्ष की थकान से टूटा हुआ, कुंठित , तनावग्रस्त हो गया है । जैसे प्राचीन पुरूरवा- उर्वशी के चले जाने पर बेचैन रहता था, उसी प्रकार आज का व्यक्ति भी संतोष रूपी उर्वशी के चले जाने पर बेचैन व कुंठित हुआ घूम रहा है । परिवार होने पर भी अजनबी व अकेलेपन की भावना से संत्रस्त है । भौतिकता की चकाचौंध मे वह पत्नी तक तो भी दांव पर लगा रहा है । सन्तान के प्रति स्नेह, वात्सल्य आदि की भावना भौतिकता की तपती धूप में सूखती जा रही है । आधुनिक बनाने की चाह में धार्मिकता तथा नैतिकता को पाखण्ड कह कर नकार रहा है । यही कारण है कि आज नैतिक व पारिवारिक मूल्य टूट रहे हैं ।

"उत्तर-उर्वशी" नाटक में आधुनिक मानव की विसंगतियों, मन:- स्थितियों व कुंठाओं का चित्रण पुरूष एक, दो, तीन, व स्त्री पात्रों के माध्यम से किया गया है । इसमें पुरूरवा तथा उर्वशी नाम के प्राचीन पात्रों को आधुनिक धरातल पर उतारा है । प्राचीन काल में तो उर्वशी का एक प्रेमी पुरूरवा था, जबकि आज तो प्रत्येक व्यक्ति पुरूरवा बना उर्वशी की तलाश में घूम रहा है । दिशाहीन, मूल्यहीन और आदर्शहीन जीने की प्रक्रिया से गुजर रहा है । नाटककार ने इस नाटक में सीधी

सपाट किन्तु चुनती शैली का प्रयोग कर समकालीन व्यक्ति का वास्तविक रूप चित्रित किया है - "चेहरे का रंग झुलसा हुआ, नंगी बदन, दर्द के आंसू पीता, मजबूरी की चादर ओढ़े, बेघर हुआ, खुले आकाश में रहता है ।"[1] इस मानसिक तनाव को झेलते हुए ईश्वर संबंधी मान्यताओं को तोड़ रहा है । ईश्वर को भी अपने समान खण्डित व टूटा हुआ मान रहा है ।

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने धर्म युग, अर्थयुग और काम युग के व्यक्तियों की विसंगतियों, मन:स्थितियों व कार्यकलापों का वर्णन किया है । धर्म युग में किसान दम्पत्ति की धार्मिक इच्छाओं को उद्‌घाटित किया है । किसान दम्पत्ति पर पाई-पाई जमा करके तीर्थ यात्रा जाने के इच्छा रखते हैं । युवा अवस्था में यात्रा की इच्छा प्रौढ़ावस्था में पूर्ण होती है । अजनबी द्वारा किसान दम्पत्ति की सेवा करना, धार्मिक युग में आदर्श, सेवा, परोपकार जैसे मूल्यों के महत्व को प्रकट करता है । नाटककार का विश्वास इस जटिल परिस्थितियों में भी आस्थावान है ।

दूसरे युग, अर्थ युग में नाटककार ने अर्थ के पीछे भागते मध्यम वर्गीय वर्ग का चित्रण किया है । समकालीन अर्थ युग का व्यक्ति भौतिक-चेतना से इतना प्रभावित हो गया है कि वह पत्नी को अन्य पुरूषों के पास भेजकर स्वार्थ सिद्धि व अर्थ प्राप्ति करना चाहता है । लेखक व प्रकाशक के माध्यम से इस तथ्य को उद्‌घाटित किया है । अर्थ युग की नारी के रूप में मोना को चित्रित किया गया जो प्रकाशक की पत्नी होते हुए भी लेखक को वासनात्मक दृष्टि से देखती है । इस प्रकार इस युग में नारी पुरूष के बढ़ते अनैतिक सम्बन्धों, स्वच्छंद यौन वृत्तियों ने पारिवारिक जीवन को विघटनशील बना दिया है । आज मनुष्य का जीवन यंत्रवत् , एकाकी, दिशाहीन हो गया है । व्यस्तता के घेरे में उलझा व्यक्ति स्वयं को खोज रहा है । "अर्थ" हेतु अर्थहीन प्रयास कर

1- उत्तर-उर्वशी - हमीदुल्ला - पृ0-35

रहा है । अर्थ युग में लेखक ने प्रकाशक, लेखक व मोना को अच्छी बुरी आत्मा के द्वारा व्यक्ति के आन्तरिक द्वंद्व, दोहरे व्यक्तित्व को प्रकट किया है । आज 'आदर्श-चेतना' के स्थान पर भौतिकता से प्रेरित 'व्यवहारिक-चेतना' बलवती होती जा रही है ।

(काम-युग के अन्तर्गत नाटककार ने पाखण्डी महात्मा व उसकी शिष्याओं के कार्यकलापों को दर्शाया है) काम को मोक्ष का मार्ग मानने वाला महात्मा पारिवारिक जीवन को नष्ट कर अपनी स्वार्थ पूर्ति करता है । महात्मा (एक पुरुष को अपना शिष्य बना लेता है । सन्तान की कामना रखने वाली उसकी पत्नी महात्मा की शरण में जाती है तो उसे नशे की गोलियां प्रसाद रूप) में देकर अपनी वासना का शिकार बना लेता है) इस प्रकार काम युग में "काम" के परिपेक्ष्य में टूटते नैतिक व पारिवारिक मूल्यों का चित्रण किया है ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने प्राचीनता को आधुनिक संदर्भों में ग्रहण कर धर्म, अर्थ, काम युग का विश्लेषण किया है । साथ ही "भौतिक-चेतना" से प्रभावित सामाजिक, राजनीतिक व नैतिक मूल्यों का भी चित्रण किया है ।

":::::::"

"ठहरा हुआ पानी" (1980)
- शान्ति महरोत्रा

"ठहरा हुआ पानी" नाटक में, आर्थिक संघर्ष से जूझते हुए विघटित परिवार, पीढ़ियों के संघर्ष, जीवन मूल्यों में टकराहटआदि को अभिव्यक्त करता है। यह नाटक निम्न मध्यम वर्गीय परिवार को लेकर लिखा गया है। यह नाटक जहाँ एक ओर धार्मिक बाह्याडम्बरों पर व्यंग्य करता है। वहीं दूसरी ओर पुराने मूल्यों, संस्कारों तथा पिता का कठोर अनुशासन से कुंठित एवं त्रस्त बच्चों की मनोदशा का भी चित्रण करता है।

प्रस्तुत नाटक का प्रारम्भ, परम्परागत मान्यताओं की स्वीकृतोक्ति से होता है। रमा एवं सीता मंगला माता की चिट्ठी लिखते हुए दोहराती जाती हैं -" जो इस कड़ी को तोड़ेगा उसका सर्वनाश निश्चित है।" इस प्रकार के अंध विश्वासों से परिपूर्ण वातावरण में पिता का कठोर अनुशासन और अधिक सन्तान को कुंठित तथा दब्बू बनाये हुए है। घर में माता का व्यक्तित्व निरर्थक है। इसप्रकार पिता के अनुशासन के बोझ तले दबे किशोर व युवा बच्चे विद्रोह की चिनगारी से सुलगने लगते हैं। बड़ी लड़की सीता पैंतीस वर्ष तक अविवाहित रह कर निरर्थक जीवन बिता रही है। उसके विवाह की चिन्ता से मुक्त पिता देवी-देवता में मग्न रहते हैं। इसीलिए सीता का स्वभाव रूखा व नीरस हो गया है। वह घुट घुट कर जीने को विवश है। "हम लोग तो फालतू हैं। जब जिसे चाहे सूली पर चढ़ा दो।" "कोई कुछ कहकर देख तो ले। बहुत हो चुका। -- आदि वाक्य उसकी कुंठित मनोवृत्ति को अभिव्यक्त करते हैं लेकिन इसके बिलकुल विपरीत रमा इस सारी घुटन को हँसते हँसते झेल रही है। वह सीता की तरह कुंठित नहीं है क्योंकि उसने मानसिक द्वन्द्व को निकलाने का मार्ग खोज

लिया है । वह नित नये प्रेमी बनाकर भरपूर जीवन को जीना चाहती है । दूसरी ओर किशोर लड़का देबू है जो पिता की तानाशाही से अस्वाभाविक हो गया है । स्कूल के पढ़ाई के स्थान पर घर-घर वह धार्मिक लेख लिखता है। इसलिए पढ़ाई में पिछड़ा वह स्कूल में अपमान सहन करता है । व्यक्तित्व हीन वह "कुछ न कर पाने" की " हीन ग्रन्थि का शिकार है । उसकी आंखों में सदैव खाली पन सा छाया रहता है । सन्तान की मनस्थिति से अनभिज्ञ माता-पिता सीता के निर्णय से हतप्रद रह जाते हैं जब वह स्वतंत्र रहने का निश्चय कर लेती है । नये मूल्यों व नई मानसिकता से अपरिचित माता-पिता, आश्चर्य,खीझ से भरे केवल पूछ पाते हैं क्यों ? रमा घर से निकल प्रेमी बदलती है । वह ऐसे पुरूष के पास चली जाती है जिसकी पत्नी को कैंसर है । वह इस आशा में है कि पत्नी के मरने के पश्चात् उसका प्रेमी उसके साथ विवाह करेगा । देबू घुटन व टूटन से चूर नियति से लड़ता है ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में मध्यम वर्गीय परिवार की विसंगतियों, मन:स्थितियों का चित्रण किया है । मध्यम वर्गीय बुजुर्गों की यह मानसिकता है कि वह जो भी कार्य करें, घर के अन्य सदस्य भी उसी में घिरे रहें । बाबू पात्र के माध्यम से इसी तथ्य को उद्घाटित किया है । सीता "आदर्श चेतना" से प्रभावित है । रमा स्वच्छंदता से प्रेरित है । वह "यथार्थवादी चेतना" से युक्त पात्र है । प्रस्तुत नाटक में सामाजिक मान्यताओं तथा पारिवारिक धारणाओं को नये दृष्टिकोण से परखा है ।

-:::::-

"सादर आपका" (1980)

- दया प्रकाश सिन्हा

दया प्रकाश सिन्हा कृत नाटक "सादर आपका" में मूलत: नारी अहमं भाव को केन्द्रित कर वैयक्तिक चेतना से अनुप्राणित है । इस नाटक में आधुनिक जीवन की जटिलताओं के साथ साथ टूटते पारिवारिक जीवन को भी चित्रित करता है ।

जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि समाज सुधार आन्दोलनों के परिणामस्वरूप नारी जीवन में शिक्षा व नौकरी के आधार पर महत्व पूर्ण बदलाव आया जिसके परिणामस्वरूप आज वह दोराहे पर पहुंच गई है । एक और वह ऊँचे पद को प्राप्त कर स्वाभिमान व अस्तित्व को बनाये हुए हैं । वहीं नई समस्याओं, टूटती नैतिकता का बिखरते पारिवारिक जीवन से संत्रस्त है । इस नाटक की नायिका लज्जवती ~~नायक की नारी पात्र~~ उन्नति प्राप्त करने हेतु अपने शरीर को माध्यम बनाती है । और अफसरी प्राप्त कर भौतिक सुख-साधन को प्राप्त करती है । उसके बढ़ते दायरे व उन्नति को उसका पति सहन नहीं कर पाता है । परिणामत: उनका पारिवारिक जीवन विषैला व तनावग्रस्त हो जाता है । परिवार के सदस्यों में अजनबीपन की भावना व्याप्त है ।

"सादर आपका" की लज्जावती मित्रों व अफसरों को खुश करके पति को नौकरी दिलवाती है, प्रमोशन पाती है । तथा अपनी से कम आयु के युवकों की ओर आकृष्ट होती है । वह एक अतृप्त ,असन्तुष्ट तथा अकेलेपन से पीड़ित नारी है । "भौतिक चेतना" से प्रभावित लज्जा ~~की~~ स्टेटस, कार, मकान आदि के सामने शारीरिक पवित्रता, शील तथा मर्यादा को तुच्छ समझती है । रेखा "व्यवहारिक चेतना" से युक्त है । वह घर के दूषित वातावरण से बाहर निकलना चाहती है । रेखा अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक भी है । वह अपने प्रेमी रोहित की

दया या सहानुभूति पर नहीं अपितु प्रेम के अधिकार पर विवाह करना चाहती है । रोहित "आदर्श चेतना" से प्रभावित है । ब्रह्मा नन्द पत्नी के तिरस्कारपूर्ण बर्ताव से कुंठित व शराबी हो गया है ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में आधुनिक जीवन को खोखलेपन, कृत्रिमता अजनबीपन तथा महानगरीय जीवन के मृतप्राय परिवेश का चित्रण किया गया है । वास्तव में यह नाटक वैयक्तिक स्तर पर बनते बिगड़ते स्त्री पुरूष के संबंधों, महत्वाकांक्षी पत्नी के कारण टूटते पारिवारिक जीवन तथा अकेलेपन से स्वच्छंद यौन चेतना की ओर उन्मुख होती नारी के मानसिक द्वंद्व को अभिव्यक्त करता है । नाटककार ने भौतिक चेतना के आधार पर बदलते नैतिक मानदण्डों का चित्रण किया है तथा स्वातंत्र्योत्तर काल की आत्मनिर्भर स्वतंत्र नारी के जीवन व चिन्तन को उभारा है ।

-::::-

"पहला राजा" §1980§
- जगदीश चन्द्र माथुर

"कोणार्क" नाटक के माध्यम से नाट्य विधा को महत्वपूर्ण मोड़ देने वाले जगदीश चन्द्र माथुर सुप्रसिद्ध नाटककार हैं।

जगदीश चन्द्र माथुर कृत "पहला राजा" प्रतीकात्मक संदर्भों में आधुनिक परिस्थितियों, सुविधा भोगी वर्ग की मनःस्थितियों तथा उपेक्षित जन साधारण की स्थितियों का चित्रण करता है। नाटककार ने राजनीति क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार हथकंडों, षड्यन्त्रों आदि को पौराणिक पात्रों के माध्यम से उद्घाटित किया है। नाटक की कथा उस काल से संबंधित है जब आर्यों को अपनी स्थापना के लिए दस्युओं से संघर्ष करना पड़ रहा था, और उनके पास अपना कोई नेता नहीं था। तब ऋषियों ने पृथु को अपना पहला राजा घोषित किया। पृथु की बढ़ती लोकप्रियता से मुनिगण चिन्तित हो गये और उसे अपदस्थ करने का प्रयत्न करते हैं। इस पौराणिक आख्यान में समकालीन राजनीति की झलक स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है।

नाटक का प्रारम्भ सुनिथा और दासी के वार्तालाप से प्रारम्भ होता है। सुनिथा अपने मृत पुत्र वेण को एक औषधि युक्त लेप से सुरक्षित रख, देवताओं से उसे पुनर्जीवित करने का आह्वान करती है। वेण दुराचारी शासक था जिसे ऋषि मुनियों ने शाप व मंत्रयुक्त कुशाओं के प्रहार से मार दिया था। वेण की हत्या के पश्चात् दस्युओं के अत्याचार बढ़ने से ऋषियों को पुनः एक संरक्षक की आवश्यकता हुई। उन्होंने वेण के शव का मन्थन करके जंघापुत्र के रूप में कवष को जंगल का राज्य दिया और भुजा पुत्र के रूप में पृथु को राजा घोषित करते हैं। कवष उपेक्षित हुआ दस्युओं को एकत्रित कर कृषि कार्य में लग जाता है। मुनिगण इस भय से कि राजा उनके नियंत्रण से बाहर न हो जाये। इसलिए उसे कवष से भी नहीं मिलने दिया जाता है। ऋषिगण अपने स्वार्थ से वशीभूत होकर

आर्यों और दस्युओं का भेदभाव बनाये रखते हैं । अपने आश्रमों की देखभाल तथा आर्य धर्म के नाम पर राजा पृथु को उलझाये रखते हैं जिसके कारण देश में अकाल पड़ जाता है । प्रजा उत्तेजित होकर आन्दोलन करती है । राजा उत्तेजित भीड़ को शान्त करता है । ऋषि इस प्रसंग से भभक उठते हैं । भूर्वडिका मूर्ति का प्रसंग लेकर पृथु और कवष में वैमनस्यता फैलाते हैं । अंत में राजा, कवष व उर्वी की परिश्रम शीलता देखकर उनको सहयोग देता है । किन्तु यहाँ भी मुनिगण निजी स्वार्थ के लिए बाँध के कार्य में बाधा डालते हैं । परिणामतः बाँध पूर्ण होने से पहले ही टूट जाता है ।

इसप्रकार पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से नाटककार ने आधुनिक जीवन की विरूपता को भी संकेतित किया है । दुराचारी वेन का शासन अंग्रेज़ों के शासन को उद्घाटित करता है । और सुनीथा द्वारा उसे सुरक्षित रखने का प्रयास आज भी अंग्रेज़ी सभ्यता की मानसिक गुलामी को जीवित रखने का प्रयास है । इसी प्रकार पृथु व कवष उच्चवर्ग व निम्नवर्ग के प्रतीक हैं । और आज के ऋषि मुनि अर्थात् नेतागण इनके बीच साम्प्रदायिकता का विष फैलाकर अपनी स्वार्थ पूर्ति में लगे हैं । कवष का पीड़ित जनता को त्राण दिलाने हेतु सरस्वती की धारा को रेगिस्तान में लाने का प्रयत्न करना आज की परिश्रमशील जनता का प्रतिनिधित्व करता है । आज निम्न वर्ग चेतनशील है । वह कवष के समान उच्च वर्ग से तिरस्कृत हुआ, अपने पुरूषार्थ में लगा हुआ है ।

इसप्रकार यह नाटक पौराणिक संदर्भ के परिपेक्ष्य में आधुनिकता को उद्घाटित करता है । प्रस्तुत नाटक में कवष आदर्श येतना से प्रभावित है । मुनिगण व्यावहारिक चेतना से । राजा पृथु शरीरिक रूप से बलशाली होते हुए भी मानसिक रूप से कमजोर है । ऋषियों के इशारों पर नाचने वाला उनके नियन्त्रण में रहने वाला शासक मात्र है । प्रस्तुत नाटक में नाटककार का उद्देश्य समकालीन पाखण्डी, धूर्त स्वार्थ में लिप्त नेताओं का चित्रण करना है ।

-:::-

"अत: किम् " (1980)

- राधा कृष्ण सहाय

"अत: किम् " नाटक आधुनिक युग में तीव्र होती "भौतिक चेतना" के आधार पर टूटते हुए नैतिक मूल्यों का चित्रण करता है । आज के आर्थिक संकट से ग्रस्त मानव जीवन की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाता है । और साथ ही भौतिक सुख साधनों की अपेक्षा भी रखता है । इस बढ़ती मंहगाई व बेरोज़गारी ने क्लर्क जैसे लघु कर्मचारी का जीना दूभर कर दिया है । वह अपने जीवन में ईमानदार व कर्तव्यनिष्ठ रहना चाहता है,परन्तु इससे उसकी आवश्यकताओं व आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं होती तो वह "आदर्श" और आदर्श हीनता" के दौराहे पर खड़ा हो जाता है जहां उसके संस्कार उसे ईमानदारी तथा नैतिकता की ओर प्रेरित करते हैं तो वहीं दूसरी ओर उसकी आवश्यकताएं, आकांक्षाएं, सामाजिक व्यवहार व पारिवारिक दायित्व उसे अनैतिक रूप से धनोपार्जन के लिए विवश करते हैं । इसी विडम्बना पूर्ण व्यक्ति की मनोस्थिति को चित्रण प्रस्तुत नाटक में किया गया है ।

इस नाटक का नायक मनोहर बाबू ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ क्लर्क है जो "आदर्श चेतना" से युक्त है । उसकी पत्नी रत्ना सुशील व कुशल गृहणी है । वह आदर्श युक्त "व्यवहारिक चेतना" से प्रभावित है । रत्ना घर की परिस्थितियों से परिचित होते हुए , झुंझलाहट में घर की आर्थिक तंगी व आवासीय समस्या का उल्लेख करती रहती है क्योंकि उनके साथ में युवा, शिक्षित बेरोजगार सुधीर (मनोहर बाबू का भाई) भी रहता है और एक बच्ची भी है । मनोहर बाबू का चचेरा भाई वीरेन तस्करी से अत्याधिक धन कमाता है । उसके समक्ष न तो आदर्श नाम की कोई वस्तु है और न ही नैतिकता के प्रति उसकी आस्था है । वह रत्ना को धन का लालच देकर तस्करी के धंधे में अपना पार्टनर बनाना चाहता है लेकिन रत्ना स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर देती है । पारिवारिक

दायित्वों व सामाजिक व्यवहारों से दबा, घुटा जीवन की आर्थिक कठिनाई से थका, टूटा मनोहर बाबू अपने आदर्शों व कर्तव्यनिष्ठा को ताक पर रख कर वीरेन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है । रत्ना इस प्रसंग में दुखी हो पति को अपशब्द कहती है ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में, साठोत्तर समाज में बढ़ती जीवन की जटिलताओं ने व्यक्ति को आदर्शहीन बनने पर विवश किया है वहीं तीव्र होती 'भौतिक-चेतना' ने भी नैतिक मूल्यों व आदर्शों को तोड़ा है । मध्यम वर्गीय व्यक्ति आज भी ईमानदार रहना चाहता है ,किन्तु यह ईमानदारी उसे सुख से रोटी नहीं देती, इच्छाओं की पूर्ति नहीं करती और विवश हो व्यक्ति अनैतिकता की ओर उन्मुख हो रहा है । यही कारण है कि आज " आदर्श-चेतना" के स्थान पर "यथार्थ-चेतना" व 'भौतिक-चेतना' बलवती हो रही है । इस नाटक का नायक मनोहर बाबू केवल इसी नाटक का नायक नहीं है अपितु समस्त निम्न मध्यम वर्गीय व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है । मनोहर बाबू "आदर्श चेतना" से प्रभावित है , जो विवशता में "भौतिक चेतना" में परिवर्तित हो जाती है । रत्ना "आदर्श युक्त व्यवहारिक चेतना से प्रभावित है । पूंजीपति वर्ग का प्रतीक वीरेन "भौतिक चेतना" से युक्त है । अंत में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक साठोत्तर विषम परिस्थितियों में टूटती "आदर्श चेतना" तथा विकसित होती "भौतिक चेतना" का चित्रण करता है ।

-:::-

"अन्य उपन्यास"

साठोत्तरी नाटकों में वैयक्तिक चेतना के परिपेक्ष्य में व्यक्ति के बदलते दृष्टिकोण तथा चिन्तन परिलक्षित होते हैं । जैसाकि उल्लेख किया जा चुका है कि स्वास्तित्व की भावना से प्रेरित नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गई है । परिणामत: परिवार में तनाव, कुंठा तथा टूटन के तत्व उपस्थित हो गये हैं । साठोत्तर नाटकों में जहाँ एक ओर बौद्धिकता, अहम् भाव तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता प्रिय व्यक्ति, पारिवारिक , सामाजिक नैतिक मूल्यों को तोड़ रहा है । सम्बन्धों की शून्यता, अजनबीपन तथा अन्य अनेक विडम्बनाओं में जी रहा है । वहीं दूसरी ओर परम्परागत रूढ़ियों, धारणाओं पर कुठाराघात भी कर रहा है । युवा पीढ़ी का अव्यवस्था के प्रति आक्रोश व विद्रोह भी इन नाटकों में परिलक्षित है । जिनका चित्रण पूर्ववर्ती पृष्ठों में किया जा चुका है । कुछ अन्य नाटकों का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है :-

हरिकृष्ण प्रेमी के "ममता" नाटक में आदर्श-चेतना से प्रभावित रजनीकांत जातिगत संकीर्णता को देश के लिए अहितकारी मान कर दूर करने का प्रयत्न करता है -"जातियों की सीमाएं कृत्रिम हैं जो हमें दुर्बल बनाने वाली है, मनुष्यता के टुकड़े करने वाली है ।"[1]

रमेश मेहता के नाटक "रोटी-बेटी" में अन्तर्जातीय विवाह को प्रधानती दी है । साथ ही रूढ़ हिन्दू रीति-रिवाजों पर प्रश्नचिन्ह लगाये हैं ।

राजेन्द्र कुमार शर्मा कृत (कायाकल्प) नाटक धार्मिक अंधविश्वासों

1- ममता - हरिकृष्ण प्रेमी - पृ0-14

तथा धर्म के नाम पर भोले-भाले लोगों को लूटने वाले धर्माचार्यों के कार्य-कलापों का पर्दाफाश करता है । बौद्धिक चेतना से प्रभावित शीला पंडे-पुजारियों की आशाओं पर पानी फेर देती है ।

रेवती सरन शर्मा कृत "अंधेरे का बेटा" में महत्वाकांक्षी नारी की मनस्थितियों को अभिव्यक्त किया है । जो अपने पति की कायरता से विक्षुब्ध हो जाती है । मेजर नारंग भी अपनी कमजोरी को अनुभव कर पाकिस्तान से युद्ध में अपना बलिदान देते हैं । इस नाटक में नाटक कार ने "आदर्श चेतना" के महत्व को स्वीकारा है ।

"अभिमन्यु चक्रव्यूह में" ‹ चिरंजीत › नाटक में प्रान्तीयता, भाषावाद, वैयक्तिक स्वार्थता तथा जातिगत समस्याओं को उभारा गया है । नाटक का नायक कैलाश " आदर्श चेतना" से सम्पन्न पात्र है जो भाई-भतीजावाद, सिफारिश आदि को महत्व न देकर प्रतिभा पर बल देता है ।

"आंधी और घर " ‹ मोहन चोपड़ा › में भी आधुनिक जीवन की विसंगतियों, जटिलताओं तथा प्राचीन नवीन के द्वन्द्व को चित्रित किया है ।

डा० चन्द्रशेखर कृत नाटक " त्रिकोण की भुजाएं" नाटक में आदर्श प्रेम की स्थापना की गई है । नमिता का प्रेमी दिवाकर भौतिक चेतना से प्रभावित, कुत्सित वासना युक्त पात्र है । तो प्रो० शर्मा आदर्श चेतना से युक्त हैं, जो दोनों पैर गवां बैठी नमिता से विवाह करने को तैयार हो जाता है ।

भगवती चरण वर्मा का नाटक "वसीयत" दो पीढ़ियों के द्वन्द्व

का चित्रण करता है । आचार्य चूड़ामणि प्राचीन मूल्यों को स्वीकार करने वाला पुरानी पीढ़ी का पात्र है । उसके बेटे तथा पुत्र -वधुएं युवा पीढ़ी के प्रतीक हैं । वे परम्परागत मूल्य, धारणाओं को नकारते हैं।

चाय पार्टियाँ [सन्तोष नारायण नौटियाल] का रमेश "व्यवहारिक चेतना" से प्रभावित पात्र है । यह नाटक वर्तमान समाज में मुखौटे लगाये सम्बन्धों को उद्घाटित करता है ।

मूल्यांकन

पूर्ववर्ती विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साठोत्तर नाट्य कृतियों में समकालीन समाज तथा देश की परिस्थितियों का यथार्थ रूप से चित्रण किया गया है । इन समस्त नाटकों में यद्यपि "यथार्थ चेतना" "भौतिक चेतना" तथा इनसे प्रभावित "व्यवहारिक चेतना" ही परिलक्षित होती है तथापि इनमें से कुछ कृतियों में "आदर्श चेतना" के महत्व को स्थापित किया गया है । इस प्रकार साठोत्तर नाटकों में "वैयक्तिक चेतना" से प्रभावित तीन दृष्टिकोणों पर आधारित नाटक मिलते हैं । प्रथमतः वे नाटक हैं जो वैयक्तिक चेतना के विशाल फलक पर सामाजिक रूढ़ियों, कुप्रथाओं, अंधविश्वासों आदि को नकारते हैं साथ ही देश में फैली अव्यवस्था और भ्रष्टाचार का चित्रण करते हुए आदर्शवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं । ये नाटक सदियों से दलित नारी वर्ग तथा निम्न वर्ग की विकासोन्मुख चेतना को भी स्वर देते हैं । इनमें - "चिराग की लौ", अंधेरे का बेटा" न धर्म न ईमान [रेवती सरन शर्मा] रात रानी, रक्त कमल [लक्ष्मी नारायण लाल] रुपया तुम्हें

खा गया ॥ भगवती चरण वर्मा ॥ अपनी कमाई ॥ राजेन्द्र शर्मा॥ भूमि की ओर ॥ सुरेश चन्द्र शुक्ल "चन्द्र"॥ पीली दोपहर ॥ जगदीश चन्द्र ॥ अत् किम् ॥राधा कृष्ण सहाय॥ ,सुनो शेफाली ॥कुसुम कुमार॥ "एक चीख अँधेरे की" ॥गोपाल राय॥ खुजराहो का शिल्पी ॥शंकर घोष॥ कजरी बन ॥लक्ष्मी नारायण लाल॥ आदि नाटक उल्लेखनीय हैं । इन नाटकों में भौतिक चेतना के स्थान पर "आदर्श चेतना" के महत्व को स्वीकारा है । डा0 लाल ने "रात रानी" में आदर्श वादी कुन्तल के आदर्श के समक्ष जयदेव के भौतिक वादी सिद्धान्तों को झुकाया है । इस नाटक के अन्य पात्र माली और सुन्दरम् भी "आदर्श चेतना" सम्पन्न हैं । "रक्त कमल" में भी आदर्श चेतना तथा नैतिकता पूर्ण राजनीति के मूल्यों को प्रतिपादित करने पर बल दिया है । रेवती सरन शर्मा के नाटक "चिराग की लौ" में अदर्श इंसपैक्टर किशोर अपने सिद्धान्तों की रक्षा हेतु अपनी पत्नी तारा को त्याग देता है । "न धर्म न ईमान" में दया तथा दिनेश सामाजिक कुरीतियों तथा कुप्रथाओं को नकारते है । "सुनो शैफाली" की हरिजन युवती शेफाली अस्तित्व की भावना से युक्त है । इसी प्रकार "वाह रे इन्सान" की नौकरानी तुलसी अपने अत्याचारी मालिक को चुनौती देती है । "पीली दोपहर" का प्रो0 सुधांशु अपनी पत्नी के निधन के पश्चात् भी नर्स कान्ता से विवाह न करके आदर्श चेतना का परिचय देता है । इसी प्रकार "भूमि की ओर" एक चीख अंधेरे की" आदि नाटकों में आदर्श चेतना को स्वीकारा गया है । ये नाटक "लक्ष्मी नारायण मिश्र",उपेन्द्र नाथ अश्क, जैसी आदर्श वादी विचारधारा को लेकर चले हैं । इन नाटकों में "आदर्श चेतना" तथा "भौतिक चेतना" का द्वंद्व चित्रित करके "आदर्श वादी चेतना" को महत्व दिया है ।

दूसरी विचारधारा के नाटकों में "स्व परक वैयक्तिक चेतना" के आधार पर शाश्वत् एवं जीवनोपयोगी मूल्यों को नकारा गया है । इस नाटकों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा बौद्धिकता के प्रभाव में पारिवारिक, सामाजिक मूल्यों तथा विवाह जैसे संबंधों पर प्रश्नचिन्ह लगाया है । इन तथ्यों पर आधारित -"देवयानी का कहना है " वामाचार, "तीसरा हाथी" §रमेश बक्षी§, "करफ्यू "§डा० लाल§ तेन्दुआ, मरजीवा § मुद्राराक्षस § दरिन्दे,उत्तर-उर्वशी §हमीदुल्ला§ घरौंदा § शंकर घोष § द्रौपदी, सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक §सुरेन्द्र वर्मा§ ठहरा हुआ पानी § शान्ति मेहरोत्रा§ एक और अजनबी §मृदुला गर्ग§ टगर, टूटते परिवेश §विष्णु प्रभाकर§ आधे-अधूरे §मोहन राकेश§ सुनो शैफाली §कुसुम कुमार§ आदि नाटक हैं । इन नाटकों के पात्र वैयक्किता के आधार पर परम्परागत मूल्यो को नकारते हैं । "देवयानी का कहना है" की देवयानी "बोल्डनेस" कापरियच देती हुई स्वच्छंदता के आधार पर सामाजिक मान्यताओं तथा विवाह पर प्रश्नचिन्ह लगाती हैं । "तीसरा हाथी" में पिता की तानाशाही में दबे, घुटे बच्चे पिता की मृत्यु का इन्तजार करते हैं । इस प्रकार के पितृत्व , स्नेह, आदर भाव जैसे मूल्यों कोनकारते हैं । द्रौपदी का जगमोहन टुकड़ों में बंटा, मुखौटे लगाये हुए हैं तथा अपने असन्तुष्ट व्यक्तित्व के लिए नित नई लड़की बदलता है ।इसी प्रकार "सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" की शीलवती शारीरिक सुख के आधार पर नपुंसक पति व वैवाहिक जीवन मर्यादा को त्याग देती है । वह मातृत्व को नारी के लिए चरम मूल्य मानने वाली विचारधारा को चुनौती देती है । "करफ्यू" के पात्र गौतम, कविता, संजय, मनीषा, आदि सामाजिक तथा नैतिक

मूल्यों को वैयक्तिकता के कठघरे में खड़ा करते हैं । "व्यक्तिगत" नाटक में भी पुरूष के अहम् भाव से टूटते "मैं" तथा "वह" के पारिवारिक मूल्यों का चित्रण किया गया है । "भौतिक चेतना" से प्रभावित "उत्तर-उर्वशी" केपात्र मोना, प्रकाशक तथा लेखक परम्परागत मूल्यों तथा आदर्श को नकारते हैं । वहीं "दरिन्दे" की नारी पात्र रति भी विवाह , पवित्रता, सतीत्व आदि मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगाती है । ~~व्यक्तिगत स्वतंत्रता का~~ उपेक्षा के भाव से आक्रोशित "टगर" की नायिका टगर वैयक्तिक चेतना से प्रभावित होकर पुरूष जाति से बदला लेने के लिए सामाजिक मूल्यों को अस्वीकार करती है । "सादर आपका" में लज्जावती भौतिक चेतना" से प्रभावित होकर सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों को तोड़ती है । -"आधे-अधूरे" की सावित्री घर व पति के वातावरण से असन्तुष्ट होकर पूर्ण पुरूष की तलाश में भटकती है । अशोक, बिन्नी तथा छोटी लड़की किन्नी सभी अपने अपने दायरे में घुट रहे हैं । इस प्रकार पारिवारिक वातावरण टूट रहा है । अन्तत: स्पष्ट हो जाता है कि इस विचारधारा के नाटकों में "यथार्थ" व "भौतिक चेतना" का प्रभुत्व है । इन नाटकों के पात्र "आदर्श चेतना" को ढकोसला, रोग तथा मूर्खता बताते हुए " यथार्थ चेतना" व भौतिक चेतना की ओर उन्मुख हुए हैं।

तीसरी विचार धारा के अन्तर्गत वे नाटक आते हैं, जिनमें "वैयक्तिक चेतना" परिस्थितिवश कुंठित हो गई है । जो व्यंग्य , आक्रोश तथा नकारात्मक रूप में नाटकों में अभिव्यक्त हो रही है । इन नाटकों में वैयक्तिक चेतना, राजनैतिक, सामाजिक तथा पारिवारिक वातावरण के भार से दबी हुई है, किन्तु राख में दबी चिनगारी की भाँति यदा-कदा प्रज्वलित हो जाती है तो पात्र अपने

अस्तित्व, अपने चहुं ओर के वातावरण के प्रति सचेत हो जाता है। किन्तु अपने को उसमें त्रस्त पाकर, कुछ न कर पाने की स्थिति में कुंठित, तनाव युक्त होकर आक्रोशित हो जाता है। इन नाटकों में त्रिशंकु § ब्रजमोहन शाह§ सम्भवामि युगे युगे §जि0जे0 हरिजीत§ रस-गन्धर्व, खेला पेलमपुर §मणि मधुकर, मिस्टर अभिमन्यु §डा0 लक्ष्मी नारायण लाल§ एक और अभिमन्यु §राम गोपाल§ एक और द्रोणाचार्य §शंकर शेष§ हत्या एक आकार की § ललित मोहन थाप्याल§ राजा बलि की कथा § रेवती सरन शर्मा§ कथा एक कंस की §दया प्रकाश सिंहा§ लोटन §विपिन कुमार अग्रवाल§ प्रजा हीरहने दो §गिरिराज किशोर§ राम की लड़ाई § लक्ष्मी नारायण लाल§ खंडित यात्राएं § रमेश मेहता§ मरजीवा § मुद्राराक्षस § तू-तू §अस्थानन्द सदासिंह § आज नहीं तो कल § सुशील कुमार सिंह § वाह रे इन्सान §रेवती सरन शर्मा§ पाँचवा सवार § गिरिराज किशोर§ बकरी §सर्वेश्वर दयाल सक्सेना§ सिंहासन खाली है §सुशील कुमार सिंह§ विरोधी §अभिमन्यु अनन्त शबनम§ चिंदियों की झालर § अमृत राय§ टूटते परिवेश §विष्णु प्रभाकर§ आदि नाटक उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में इसी प्रकार की दबती घुटती तथा सिसकती वैयक्तिक चेतना दृष्टिगोचर होती है। त्रिशंकु नाटक का पात्र युवक, समाज और व्यवस्था द्वारा ठुकराया, कुछ न कर पाने के एहसास से विक्षिप्त, क्रान्ति लाना चाहता है, पर क्रान्ति का मार्ग ज्ञात नहीं। उसी प्रकार मिस्टर अभिमन्यु का राजन व्यवस्था के षड्यन्त्र तथा भ्रष्टाचार को जानकर निकलने को आतुर होता हुआ भी निकल नहीं पाता। "सम्भवामि युगे-युगे" के पात्र जनता के प्रतीक नागरिक एक, दो, तीन चेतना सम्पन्न हैं। परन्तु जन समर्थन के अभाव में विद्रोह करने में असमर्थ हैं। "आज नहीं तो कल" के युवक, युवती तथा पुरुष पात्र देश की अव्यवस्था, नेताशाही के प्रति

आक्रोशित तथा विद्रोही हैं। "टूटते परिवेश" का विवेक भ्रष्ट वातावरण से कुंठित होकर ईमानदारी, चरित्र , आदर्श जैसे नैतिक मूल्यों की अवहेलना करता है। चरित्र को अपने विकास के मार्ग में बाधा पाता है। (कथा एक कंस की) का कंस भावुक हृदय होता है जो भ्रष्ट राजनीति के परिवेश में आकर हृदयहीन और क्रूर बन जाता है। "एक और द्रोणाचार्य" का अरविन्द भी अव्यवस्था का शिकार हुआ दिशाहीन, कुंठित तनावग्रस्त हो जाता है। "प्रजा ही रहने दो" की प्रजा की प्रतीक द्रोपदी अपनी मुक्ति की प्रार्थना करती है। "रस गन्धर्व" के कैदी पात्र अ ब स द देश की अव्यवस्था व भ्रष्टाचार पर व्यंग्य करते हैं। "बकरी" में भी युवक के माध्यम से राजनीति के हथकंडों का पर्दाफाश किया गया है। इसी प्रकार शतुर्मुग ,जनता का सेवक, भस्मासुर, एक गधा था उर्फ अलादाद खां, आदि नाटकों में भी राजनीति षड्यन्त्रों का प्रमाणिक दस्तावेज हैं जो व्यंग्य के माध्यम से कथ्य को प्रस्तुत करते हैं। इन नाटकों की विशेषता है कि इनमें पात्र आदर्श रहना चाहता है, किन्तु समकालीन विकट परिस्थितियां उन्हें अपने कर्तव्य तथा आदर्श पर स्थिर नहीं रहने देती। आदर्श व भौतिकता के द्वंद्व में फंसे ये पात्र आक्रोशित व कुंठित हैं।

इस प्रकार अंत में कहा जा सकता है कि समाकालीन नाटकों में "आदर्श चेतना" यत्र तत्र दृष्टिगोचर होती है। वैज्ञानिकता, आद्योगिककरण, राजनीति परिवेश में भौतिक चेतना व यथार्थ चेतना ही मुख्यत: परिलक्षित होती है।

-:::-